संस्कृति

compiled and created by Bhartesh Mishra

संस्कृति

वर्ष 2
अंक 1

(सांस्कृतिक विचारों की प्रतिनिधि पत्रिका)

चैत्र, 1882
(मार्च–अप्रैल 1960)

वैज्ञानिक अनुसंधान और सांस्कृतिक कार्य मंत्रालय
भारत शासन

compiled and created by Bhartesh Mishra

सम्पादक-मंडल

प्रो० मा० सं० थेकर
श्री बनारसीदास चतुर्वेदी
डा० नगेन्द्र
श्रीमती मुरियल वासी
राजेन्द्र द्विवेदी (सचिव)

compiled and created by Bhartesh Mishra

संस्कृति

वर्ष 2 | चैत्र, 1882 (मार्च–अप्रैल, 1960) | अंक 1

विषय-सूची

दृष्टिकोण

भारतीय रंगमंच के कुछ पहलू	4–7	नोरा रिचर्ड्स
	8–12	हर्बर्ट मार्शल
	13–16	सुरेश अवस्थी

व्यंग चित्र

मैक्स बिअर बोम	17–18	जेम्स लेबर

संगीत

संगीत की संकल्प शक्ति	19–20	लक्ष्मीनारायण गर्ग

फिल्म

आज के भारतीय फिल्म	21–23	मारी सीटन

विविध

मैकाले पर पुनर्विचार	24–27	विश्वनाथ दत्त
गांधी-वाणी	27	स्फुट

स्तम्भ

सम्पादकीय	1–3	
	28–30	विन्दु..विन्दु..विचार
सांस्कृतिक समाचार	31–38	
	39–40	लोक मंच
समीक्षा	41–44	
	45	लेखकादि-परिचय

compiled and created by Bhartesh Mishra

संस्कृति चैत्र, आषाढ़, आश्विन और पौष में प्रकाशित होती है।

यह देश-विदेश में सांस्कृतिक कार्य और प्रयोगों पर प्रामाणिक जानकारी देती है। इसकी सामग्री बिना किसी पक्षपात के प्रस्तुत की जाती है। 'संस्कृति' में प्रतिपादित विचार लेखकों के होते हैं, 'संस्कृति' के नहीं। "सांस्कृतिक-समाचार" स्तम्भ के अन्तर्गत दिए जाने वाले समाचार विभिन्न सूत्रों से इकट्ठे किए जाते हैं और 'संस्कृति' उनकी प्रामाणिकता के बारे में जिम्मेवार नहीं है।

'संस्कृति' में केवल वे ही रचनाएं स्वीकार की जाएंगी जो अन्यत्र न छपी हों। 'संस्कृति' के लिए रचनाएं और चन्दा भेजने और अंकों के पहुंचने के बारे में पूछताछ का पता है : सम्पादक, 'संस्कृति' वैज्ञानिक अनुसंधान और सांस्कृतिक कार्य मंत्रालय, 1 ई० 3 कर्जन रोड 'ए' बैरक्स, नई दिल्ली।

वार्षिक चन्दा चार रुपए है और एक अंक का मूल्य एक रुपया है। मूल्य पहले ही मनीआर्डर से आ जाना चाहिए।

'संस्कृति' में प्रकाशित लेख फिर से छापे जा सकते हैं, लेकिन इस पत्रिका का उल्लेख अवश्य किया जाना चाहिए और प्रकाशन की एक प्रति सम्पादक के पास भेजी जानी चाहिए।

समीक्षा के लिए सांस्कृतिक विषयों सम्बन्धी पुस्तकों की दो-दो प्रतियां भेजी जानी चाहिए।

compiled and created by Bhartesh Mishra

सम्पादकीय

इस अंक के साथ 'संस्कृति' अपने दूसरे साल में प्रवेश कर रही है। कौबेल के अनुसार संस्कृति सत्य, सौन्दर्य, और नैतिक 'शिव' की खोज के द्वारा जिन्दगी में एक अभिप्राय और एक मूल्य जोड़ देती है। इससे पुराने जमाने के लोगों की सफलताओं को निश्चित रूपों में वर्गीकृत किया जा सकता है। 'सत्यं, शिवं और सुन्दरम्' ही वह सूत्र है, जो दुनिया भर की और हजारों साल पुरानी संस्कृतियों के जीवन-दर्शनों को एक निश्चित सांचे में पिरो सकता है। दूसरे शब्दों में हम यह भी कह सकते हैं कि दुनिया में आज जो सत्य, शिव या सुन्दर देखने को मिलता है, वह मानवीय संस्कृति के विशेष क्षेत्रों में गिने चुने महापुरुषों की विशेष साधना के फलस्वरूप ही है। संगीत में बाश, मोज़ार्ट, बीथोवन, भरत, तानसेन आदि ने और चित्रकला में भारत में अजन्ता और मध्यकालीन शैलियों के अज्ञात नाम चित्रकारों ने और गियोटो, गिओरगियन, ल्योनार्ड दा विंसी, कांसटेबल और प्रभाववादियों ने दुनिया में जो कुछ दिया है, वह

compiled and created by Bhartesh Mishra

संस्कृति के क्षेत्र-विशेषों में विशिष्ट साधना के ही कारण दिया जा सका है। यही बात स्थापत्य के क्षेत्र में ताजमहल के शिल्पी और माइकेलैंजेलो, सैलेडियो, क्रिस्टाफर रेन आदि के बारे में और विज्ञान और दर्शन के क्षेत्र में अफलातून, अरस्तू, न्यूटन, डाल्टन, डारबिन, लीबनीज़, हीगेल आदि के बारे में कही जा सकती है और साहित्य के क्षेत्र में कालिदास, तुलसी, शेक्सपियर, कीट्स, वर्डसवर्थ, रवीन्द्र आदि के बारे में कही जा सकती है। जनता के सामाजिक उन्नयन के क्षेत्र में यही बात रामकृष्ण, विवेकानन्द, दयानन्द, राम-मोहनराय, गांधी, विनोबा आदि के बारे में भी कही जा सकती है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि 'संस्कृति' भी विशेषज्ञ की चीज है। यह बात बिल्कुल अलग है कि एक सर्वथा अविशेषज्ञ ग्रामवासी की भी अपनी निराली संस्कृति होती है और यही संस्कृति की विशेषता है कि वह अभिजात वर्ग के साथ-साथ पिछड़ी वनजातियों तक में पाई जाती है।

संस्कृति के इस सुविशाल क्षेत्र में सांस्कृतिक विचारों को वहन करने के एक माध्यम के रूप में यह पत्रिका अब अपने आपको सुस्थापित कर चुकी है। भारत के महान् सांस्कृतिक इतिहास में कभी-कभी प्राचीन और नवीन का अनुपात हमारी आंखों से ओझल हो जाता है। भारत के विशाल अतीत को देखते हुए स्वाभाविक ही है कि संस्कृति की किसी भी चर्चा में हम अपने अतीत की ओर देखें, परन्तु संस्कृति एक विकासशील वस्तु है और इस बारे में स्थिरता घातक हो सकती है। इस प्रवृत्ति के परिशोध का माध्यम बनना 'संस्कृति' की आकांक्षा है।

इस अंक के साथ हम 'संस्कृति' के पिछले साल की समेकित विषय-सूची दे रहे हैं। पाठक देखेंगे कि संस्कृति के लिए सहायता और भारतीय सौन्दर्य बोध के मूल्य जैसे विवादग्रस्त विषयों की चर्चा उठाने के साथ-साथ हम आज की कहानी, महान् उपन्यास की परिभाषा, संस्कृति क्या है—जैसे व्यापक और संगत विषयों पर संगोष्ठियां आयोजित कर चुके हैं। इस अंक में भी हम भारतीय रंगमंच के कुछ पहलुओं पर दो दृष्टिकोणों से प्रकाश डाल रहे हैं। इसके साथ ही हम पिछले साल में रंगमंच की हलचलों का एक संक्षिप्त लेखा-जोखा भी दे रहे हैं। हमारा विचार है कि हम आगे से संस्कृति के अन्य महत्वपूर्ण क्षेत्रों की गतिविधियों की भी इस तरह की एक संक्षिप्त झांकी प्रस्तुत किया करेंगे। इन विचारोत्तेजक संगोष्ठियों के साथ 'संस्कृति' भारत की जीवन-पद्धति के बारे में ऐसे अनेक तत्वों की चर्चा छेड़ चुकी है, जिनके परिवर्तित या परिवर्द्धित होने की मांग हो सकती है। इस दिशा में संस्कृति के इस अंक में संगीत और फिल्म संबंधी उपयोगी लेखों के साथ-साथ हम मैकाले जैसे विवादग्रस्त व्यक्ति के बारे में भी एक लेख दे रहे हैं। इन बहस योग्य प्रश्नों पर 'संस्कृति' एक मंच के रूप में सामने आ रही है और हम 'लोक मंच' स्तम्भ के अन्तर्गत पाठकों के पत्रों को बढ़ावा दे रहे हैं। 'विन्दु-विन्दु विचार' स्तम्भ के अन्तर्गत हम अनेक सामयिक समस्याओं पर लोगों का ध्यान आकर्षित कर रहे हैं। हमारी पुस्तक-समीक्षा भी न्याय और तथ्यात्मकता के लिए अपना एक विशिष्ट स्तर स्थापित कर चुकी है।

compiled and created by Bhartesh Mishra

कुछ कारणों से इस बार हम 'सांस्कृतिक हलचलें' स्तम्भ नहीं दे रहे हैं, जिसके अन्तर्गत सांस्कृतिक कार्य-कलाप की आधिकारिक जानकारी दी जाती रही है। इस दृष्टि से हमने इस बार 'सांस्कृतिक समाचार' स्तम्भ को और भी व्यापक और पुष्ट बना दिया है।

—सम्पादक

ईरानी और यूनानी लोग, पार्थियन और बैक्ट्रियन लोग सीथियन और हूण लोग मुसलमानों से पहले आने वाले तुर्क और ईसा की आरम्भिक सदियों में आने वाले ईसाई यहूदी और पारसी—ये सब के सब एक के बाद एक भारत में आये और उनके आने से समाज ने एक हल्के कंपन का अनुभव किया, मगर अंत में जाकर वे सब के सब भारतीय संस्कृति के महासमुद्र में विलीन हो गये। उनका कहीं कोई अलग अस्तित्व न बचा।

जवाहरलाल नेहरू

'दिनकर' के 'भारतीय संस्कृति' के
चार अध्याय, पृष्ठ 38 पर उद्धृत

compiled and created by Bhartesh Mishra

दृष्टिकोण

भारतीय रंगमंच के कुछ पहलू

एक संगोष्ठी

इस बार "दृष्टिकोण" के अन्तर्गत हम भारतीय रंगमंच की क्षितिज के कुछ पहलुओं पर प्रकाश डालने वाले तीन लेख दे रहे हैं। पहले लेख में नोरा रिचर्डस विश्वविद्यालयों में लिखे और प्रस्तुत किए जाने वाले नाटकों की कुछ खास समस्याओं पर प्रकाश डालती हुई कहती हैं कि सबसे बड़ी कमी नाटकों का अन्धाधुन्ध चुनाव है। उनका सुझाव है कि उपयुक्त नाटकों के अभाव में विदेशी नाटकों को चुना जा सकता है और उनमें उचित परिवर्तन करके उन्हें प्रस्तुत किया जा सकता है। हर्बर्ट मार्शल इस बात की शिकायत करते हैं कि भारत में व्यावसायिक रंगमंच को अब तक समुचित समर्थन प्राप्त नहीं हुआ है। उनका विचार यह भी है कि भारत में नाटक के पूर्ण विकास में सबसे बड़ी बाधा सजीव नाटक की अविच्छिन्न परम्परा का अभाव है। तीसरे लेख में डा० सुरेश अवस्थी ने भारतीय रंगमंच की पिछले साल की गतिविधियों का एक संक्षिप्त सर्वेक्षण किया है। जैसा पाठक देखेंगे, उन्होंने गागर में सागर भरने में पूरी सफलता प्राप्त की है। लेखों में व्यक्त विचार स्वयं लेखकों के हैं, 'संस्कृति' के नहीं। इन लेखों में उठाए गए विवाद-योग्य प्रश्नों पर हम पाठकों के पत्रों का स्वागत करेंगे।

—सम्पादक

: एक :

भारतीय विश्वविद्यालयों के लिये नाटक

नाटक रंगमंच का मूलाधार है और यही वह मूल तत्व है, जो नाट्यशालाओं और वायस्कोपों के तमाशों का अंतर स्पष्ट करता है और नाट्यशालाओं की श्रेष्ठता सिद्ध करता है। हर युग में जीवन की व्याख्या और विवेचना के लिये नाटकों की आवश्यकता होती है, अन्यथा रंगमंच अतीत का चित्र प्रस्तुत करने वाला यंत्र मात्र बन कर रह जाता है।

—कैनेथ मैकगोबन*

ये शब्द 1956 में शिकागो में अमेरिकी शैक्षणिक रंगमंच संस्था के सम्मेलन के अवसर पर स्वतः की गई एक जिज्ञासा का समाधान करते हुए कहे गए थे। जिज्ञासा यह थी कि शैक्षणिक नाट्यगृहों के लिए नए ना प्रस्तुत करना अथवा नए नाट्य लेखकों का पोषण करना क्यों आवश्यक

*संयुक्त राज्य अमेरिका की केलीफोर्निया यूनिवर्सिटी के नाट्यकला विभाग के अध्यापक

compiled and created by Bhartesh Mishra

इस प्रसंग में शैक्षणिक शब्द भ्रामक सिद्ध हो सकता है। इसका अभिप्राय शिक्षाप्रद नाटकों से नहीं अपितु उन नाटकों से है जो ऐसी शिक्षा संस्थाओं और विश्वविद्यालयों द्वारा प्रस्तुत किए जाते हैं जिन में नाटक न केवल शोध अथवा अध्ययन का विषय है, बल्कि जहां नाटक लिखना सिखाया जाता है और नाटक खेले जाते हैं।

बहुधा यह प्रश्न किया जाता है कि क्या नाटक लिखना सिखाया जा सकता है ? इसका उत्तर यही है कि निबन्ध लेखन की भांति नाटक लिखना भी सरलता से सिखाया जा सकता है। किन्तु कालेज में निबन्ध लिखने का अभ्यास करने वाला प्रत्येक विद्यार्थी निबन्धकार नहीं हो सकता। हां, निबन्धों के प्रति उसकी आलोचनात्मक दृष्टि अवश्य विकसित हो जाती है। यही बात नाटकों के लिखने के सम्बन्ध में लागू होती है। आजकल या तो नाटकों की आलोचना ही नहीं रही, यदि थोड़ी बहुत कहीं है भी तो वह बहुत निम्न स्तर की होती है। विश्वविद्यालयों में नाट्यकला को किसी सीमा तक तड़क-भड़क का पर्याय मान लिया गया है और उसमें गंभीरता का अभाव है। अधिकारियों की ओर से इस प्रवृत्ति का कोई विरोध नहीं किया गया है। जहां तक मेरी जानकारी है, भारत में ऐसा कोई विश्वविद्यालय नहीं है, जिसमें कोई पृथक नाट्य विभाग हो और जिसे केन्द्र बनाकर इस प्रवृत्ति को रोकने तथा दूर करने का प्रयत्न किया जा सके। विश्वविद्यालयों में नाट्य विभाग स्थापित करने का तो सम्भवतः उपयुक्त अवसर अभी नहीं आया है। किन्तु प्रत्येक विश्वविद्यालय में नाट्यकला के कम से कम एक प्राध्यापक की नियुक्ति करना तो अवश्य ही सम्भव और व्यावहारिक है। विश्वविद्यालय से सम्बद्ध अनेक कालेज इस व्यवस्था से लाभ उठा सकते हैं। इन कक्षाओं में केवल प्रतिभाशाली और परिश्रमशील विद्यार्थियों को ही प्रवेश मिलना चाहिए। उन्हें नाटक के इतिहास की शिक्षा दी जानी चाहिए एवं क्लासिकल तथा आधुनिक, दोनों ही प्रकार के नाटकों में पारंगत बनाया जाना चाहिए। इन विद्यार्थियों को नाटक लिखने, अभिनय करने तथा नाटक प्रस्तुत करने की तकनीक भी सिखाई जानी चाहिए। नाटक लिखने की एक कक्षा खोली जाए और किसी भी विद्यार्थी को नाट्यकला का डिप्लोमा तभी दिया जाये, जब कि वह कोई मौलिक नाटक रंगमंच पर प्रस्तुत करने में सफल हो जाए। नाट्यकला के प्रोफेसर के अधीन इस प्रकार शिक्षा प्राप्त करने वाले विद्यार्थी अगर डिप्लोमा प्राप्त नहीं कर सकें, तो भी वे कालेजों में खेलने के लिए अच्छे नाटक चुन सकेंगे और प्रस्तुत कर सकेंगे।

विश्वविद्यालयों के विद्यार्थियों में नाट्यकला के प्रति बड़ा ही उत्साह है, यह तो सभी प्रेक्षकों को विदित है। यह भी स्पष्ट है कि सैनिक और असैनिक दोनों ही समाज में तथा कुछ औद्योगिक संस्थानों में भी नाट्य कला के प्रति बड़ा उत्साह है। इस उत्साह का मुख्य कारण यह है कि लोग मनोरंजन चाहते हैं और इस प्रकार शौकिया रंगमंच के अभाव की पूर्ति करते हैं। शैक्षणिक रंगमंच और शौकिया रंगमंच में यह अन्तर है कि शैक्षणिक रंगमंच एक ऐसे रंगमंच का विकास करने के लिए प्रयत्नशील होता है, जो मनोरंजन के साथ-साथ सृजनात्मक भी हो।

क्या भारत के विश्वविद्यालयों में ऐसे रंगमंच का विकास किया जा रहा है। यह विश्वविद्यालयों के लिए एक सुनहरा अवसर है, पर साथ ही उन पर एक भारी दायित्व भी है। ऐसी स्थिति में जब कि विश्वविद्यालयों में न तो नाट्यकला विभाग हैं और न नाट्यकला के प्राध्यापक का पद ही, तो इस मामले की सारी ज़िम्मेदारी कालेजों के उन अध्यापकों के कन्धों पर आती है, जिन्हें अभिनीत नाटक में रुचि होती है। प्रत्येक कालेज में एक न एक ऐसा अध्यापक अवश्य होता है, जिसे नाटकों में दिलचस्पी होती है और ऐसे बहुत से प्रतिभाशाली विद्यार्थी भी मिल जाते हैं जो अभिनय करने तथा गायन एवं नृत्य में भाग लेने के लिए आतुर होते हैं। यह स्वाभाविक ही है कि ऐसे विद्यार्थी नाट्यकला में दिलचस्पी रखने वाले अध्यापक से कालेज में कोई कार्यक्रम प्रस्तुत करने में सहायता देने की याचना करें। बहुधा ये विद्यार्थी रंगारंग अर्थात् विविध कार्यक्रम प्रस्तुत करते हैं। जहां तक गायन और नृत्य कार्यक्रम का सम्बन्ध है, विद्यार्थी इधर उधर से सुन सुनाकर और देख कर तथा मित्रों के सम्मुख अभ्यास करके काफी प्रवीण हो जाता हैं। किन्तु यही बात कार्यक्रम के अन्तर्गत प्रस्तुत किए जाने वाले लघु नाटक के बारे में नहीं कही जा सकती। प्रश्न यह उठता है कि इस नाटक का चुनाव कौन करता है और किन साधनों से ? जिन कालेजों में नाटकों पर विचार विमर्श किया जाता है, क्या उनमें नाटक अध्ययन गोष्ठियां भी हैं ? फिर यह प्रश्न उपस्थित होता है कि अमुक नाटक ही अभिनय के लिए क्यों चुना जाय ? क्या कोई नाटक सिर्फ इसीलिए चुना गया कि चुनने वाले ने उसे पहले कहीं देखा था अथवा उसके बारे में कुछ पढ़ा था। संभव है उन्होंने ईडिपस रैक्स के बारे में पढ़ा हो, जो संसार के अन्य भागों में ही नहीं, बल्कि भारत में भी बड़ा लोक-प्रिय रहा है। उन्होंने शायद "दि डाल्स हाउस", "द चेरी औरचर्ड" और "वेटिंग फार गाडेट" भी पढ़ा हो। यदि इन नाटकों को कुछ ख्याति प्राप्त हुई है, तो इसका यह मतलब नहीं कि उनको कालेजों में रंगमंच पर प्रस्तुत किया जाए। इनमें एक भी नाटक कालेज में अभिनय के लिये उपयुक्त नहीं है। शौकिया रंगमंच के लिए तो रंगमंच-संसार की नवीनतम प्रवृत्तियों को, उनमें भी फैशनेबुल प्रवृत्तियों को अपनाना आवश्यक हो सकता है, किन्तु कालेजों को इसकी कोई ज़रूरत नहीं है। विदेशी नाटकों को भारत में रंगमंच पर प्रस्तुत करने के पक्ष में मुख्य दलील यह है कि इससे मौलिक नाटकों की रचना को प्रोत्साहन मिलेगा। हां, साथ ही दर्शक अन्य देशों के नाटक देख कर उन देशों से और भी अच्छी तरह परिचित होते हैं जो स्वयं अपने में एक बहुत अच्छी बात है। कालेज में प्रस्तुत किए जाने वाले नाटक चाहे कामदी हों, व्यंग्य हों अथवा प्रहसन, वे सब स्वाभाविक और सुरुचिपूर्ण होने चाहिए। यदि विश्वविद्यालय नाट्यशास्त्र के प्राध्यापक पद की व्यवस्था न कर सकें तो एक विकल्प यह हो सकता कि वे गर्मियों की छुट्टियों में नाटक और रंगमंच में दिलचस्पी लेने वाले अध्यापकों के लिए कम से कम डेढ़ महीने के कोर्स का आयोजन करें और इन अध्यापकों से यह वचन लिया जाए कि वे अपने-अपने कालेजों में नाटकों का स्तर सुधारेंगे तथा एक नाटक स्वयं प्रस्तुत करेंगे। इस प्रकार के कोर्स का संचालन विशेषज्ञ ही कर सकते हैं। अब भारत में यूरोप और अमेरिका से नाट्य-कला की शिक्षा प्राप्त करके आने वाले स्त्री-पुरुषों की संख्या दिन प्रति दिन बढ़ती जा रही है और उनके लिए इससे बढ़ कर प्रसन्नता की बात क्या हो सकती है कि नाट्यकला प्रशिक्षण का एक नया व्यवसाय शुरू होजाए।

compiled and created by Bhartesh Mishra

विश्वविद्यालय रंगमंच की वर्तमान स्थिति में सबसे अधिक ध्यान कालेजों में उन्हें श्रेष्ठ रूप में प्रस्तुत करने पर दिया जाना चाहिए। विद्यार्थियों के अभिनय के लिए समकालीन नाटक, और वे भी भारतीयों द्वारा लिखित नाटक, सर्वोत्तम रहेंगे। भारत के समसामयिक जीवन से चाहे जितने नाटकों की कथावस्तु उपलब्ध हो सकती है, शहर और देहात, कालेज और विश्वविद्यालय, दफ्तर और दूकान तथा घर और बाहर—सर्वत्र कथावस्तु के लिए मसाला बिखरा पड़ा है। कालेज के नाटकों को राजनीति और और सैक्स आदि से परे रखा जाना चाहिए। कहने का अभिप्राय यह नहीं है कि रोमांस और नागरिक कल्याण वर्जित विषय समझे जाएं, किन्तु कालेज के रंगमंच पर कोई ऐसी चीज प्रस्तुत नहीं की जानी चाहिए, जिससे यौन भावना उत्तेजित हो अथवा दलगत राजनीति को प्रोत्साहन मिले। कालेज में ऐसे नाटक खेले जाने चाहिए, जो दर्शकों में उदात्त भावना का संचार करें और प्रेरणाप्रद हों। भयावह और रोमांचकारी नाटक प्रस्तुत नहीं किए जाने चाहिए, किन्तु साहस और वीरता का संदेश देने वाली कथावस्तु का निःसंकोच उपयोग किया जा सकता है, विस्थापित व्यक्तियों का संघर्ष और प्रयत्न इसका एक ज्वलंत उदाहरण है। कालेजों के लिए ऐतिहासिक नाटक उपयुक्त हैं। पौराणिक नाटक भी ठीक रहेंगे, किन्तु वे समसामयिक ढंग से लिखे होने चाहिए। नाट्यशास्त्र का यह एक बड़ा ही उत्तम रूप है, परन्तु इसके लिए प्रौढ़ रचना की आवश्यकता होती है। इस प्रकार के प्रौढ़ लेखन को विश्वविद्यालयों के नाट्य-शास्त्र विभाग ही प्रोत्साहित कर सकते हैं।

नये नाटककारों की रचनाओं को कालेज के रंगमंच पर प्रस्तुत करने का अवसर देना सभी दृष्टियों से उचित प्रतीत होता है। जिस लेखक का अभी तक कोई नाटक न खेला गया हो, उसे अपनी रचना विश्वविद्यालय के अधिकारियों के समक्ष रखने के लिये प्रोत्साहित किया जाये और यदि उसे रंगमंच पर खेलने के लिये स्वीकार कर लिया जाये, तो लेखक को स्वयं उसका पूर्वाभ्यास कराना चाहिए। कालेज के रंगमंच पर जो नाटक प्रथम बार प्रस्तुत किया जाये, उसे एक प्रकार का परीक्षण समझा जाना चाहिये, चाहे वह नाटक किसी विद्यार्थी का लिखा हुआ हो और चाहे किसी प्रौढ़ लेखक का। यदि रंगमंच पर खेले जाने के बाद इस नाटक को ऐसे दर्शकों के पास आलोचना के लिये भेज दिया जाये, जिनकी इस विषय में रुचि है तो यह बड़ा उपयोगी सिद्ध होगा। यदि ये आलोचक नाटक को सार्वजनिक प्रदर्शन के उपयुक्त समझें, तो लेखक को उनके सुझावों के अनुसार नाटक में समुचित परिवर्तन कर देना चाहिए।

यद्यपि कालेजों में नाटकों का स्तर ऊंचा उठाना और अच्छा बनाये रखना सर्वथा वांछनीय है, फिर भी यह आशा नहीं की जा सकती कि विद्यार्थियों द्वारा लिखे गये नाटक किसी असाधारण उच्च-कोटि के होंगे। हां, यदा-कदा यह सम्भव है कि इन परीक्षणों में किसी प्रतिभाशाली व्यक्ति की कोई सचमुच ही उत्कृष्ट रचना सामने आ जाये।

कालेजों की नाट्य लेखन प्रतियोगिताओं में चाहे पुरस्कार थोड़ा भी क्यों न हो, वे बड़ी प्रेरणाप्रद होती हैं। 1913 में पन्द्रह रुपये के छोटे से पुरस्कार के लिये द्वितीय वर्ष के एक छात्र का पंजाबी में एक बड़ा ही सुन्दर एकांकी नाटक प्राप्त हुआ। 'दुल्हन' नामक यह एकांकी आई० सी० नन्दा ने लिखा था। कालेजों में खेले जाने के यह नाटक बड़ा ही उपयुक्त है और लगभग पचास वर्ष बाद आज भी पुराना नहीं पड़ा है। ऐसे अनेक छोटे छोटे ता हैं, जिनसे कि कालेजों में नाट्य परम्परा को सुदृढ़ किया जा स है और साथ ही विश्वविद्यालय के अधिकारियों की नाटकों स्तर सुधारने की मांग भी पूरी की जा सकती है।

इस बीच भारतीय विश्वविद्यालयों में नाट्यशास्त्रों के प्राध्या नियुक्त करने के लिये कुछ रचनात्मक कदम उठाये जा हैं। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिये विभिन्न राज्यों से नाट्यश के तीन-तीन विद्यार्थियों के दल एक के बाद एक प्रशिक्षण के यूरोप अथवा अमेरिका भेजे जायें। अमेरिका भेजना अधिक ला दायक रहेगा। इन दलों को तीन-तीन वर्ष तक प्रशिक्षण मि चाहिए। यदि इस सुझाव के अनुसार कार्यवाही की जाये, तो वर्ष में भारत में शैक्षणिक रंगमंच भली भांति स्थापित हो जायेगा

शैक्षणिक रंगमंच में अमेरिका संसार में अग्रणी है। अमे शैक्षणिक रंगमंच संस्था की शाखाएं बहुत से विश्वविद्यालयों में ख हुई हैं। उधर यूरोप में बहुत समय पहले से ही संगीत तथा ना की शिक्षा देने वाली अकादेमियां तथा स्कूल चले आ रहे हैं ब्रिटेन के आक्सफोर्ड तथा कैम्ब्रिज जैसे प्राचीन विश्वविद्यालयों ऐसे-ऐसे स्नातक शिक्षा प्राप्त करके निकले हैं, जिन्होंने रंगमंच विकास में बड़ा योग दिया है। इनमें सर फ्रैंक बैनसन का नाम वि रूप से उल्लेखनीय है, जिनका व्यावसायिक रंगमंच पर एक अभि प्रबन्धक के रूप में आविर्भाव हुआ और जिन्होंने ब्रिटेन के रंग को एक नई दिशा दी। किन्तु अब आधुनिक संसार शैक्षणिक रंग के क्षेत्र में अमेरिकी पद्धति को अपनाता जा रहा है। ब्रिस्टल अ पेरिस विश्वविद्यालय में अब वर्कशाप से सम्बद्ध पाठ्यक्रमों की व्यव है। लन्दन विश्वविद्यालय नाट्यशास्त्र के दो वर्ष के प्रशिक्षण के बाद डिप्लोमा प्रदान करता है और तीसरे वर्ष के प्रशि के उपरान्त वहां से रंगमंच कला का डिप्लोमा भी प्रा किया जा सकता है। यूरोप में नाटक अकादेमियों का बाहुल्य और उनकी संख्या में निरन्तर वृद्धि होती जा रही है। कि शैक्षणिक रंगमंच से सम्बद्ध व्यक्तियों के विचार में व्यावसायि रंगमंच के अध्ययन के लिये विश्वविद्यालय से अच्छा अ कोई स्थान नहीं हो सकता जहां कि सैमुएल सैल्डन के शब्दों में "ना शास्त्र के विद्यार्थी को नाटक प्रस्तुत करने वाली अकादेमियों की तुल में ज्यादा अच्छी शिक्षा मिलती है, क्योंकि विद्यार्थी को वि विद्यालय में इस व्यवसाय के अतिरिक्त कुछ और भी सीख को मिलता है और उसे वह सीखना पड़ता है।"

अमेरिका का शैक्षणिक रंगमंच जार्ज पीयर्स बेकर के उ मस्तिष्क की देन है। सन् 1907 ई० में उन्होंने नाट्य लेखन इंगलिश–47 नामक एक स्नातक पाठ्यक्रम आरम्भ किया था। उस सम ये हारवर्ड विश्वविद्यालय में अध्यापक थे, किन्तु विश्वविद्याल के अधिकारियों को रंगमंच के प्रति उनकी निष्ठा पसन्द न थी और अपना नाट्य लेखन पाठ्यक्रम तथा 47-वर्कशाप नाम अपना प्रसिद्ध कार्यक्रम, जो 1912-13 में शुरू किया गया था, पाठ चर्यातिरिक्त कार्य के रूप में चलाना पड़ा।

compiled and created by Bhartesh Mishra

हारवर्ड विश्वविद्यालय के अधिकारी शैक्षणिक रंगमंच के विचार को इतना नापसन्द करते थे कि उन्होंने एक दानवीर का विश्वविद्यालय के लिये दस लाख डालर से एक रंगशाला बनाने का प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया। 1924 में बेकर येल विश्वविद्यालय चले गये और उस दानवीर ने इस विश्वविद्यालय के लिये रंगशाला बनाने का प्रस्ताव किया। इसी विश्वविद्यालय में उन्होंने शैक्षणिक रंगमंच को उन्नति के शिखर पर पहुंचाया। उन्हीं के प्रयत्नों का यह फल था कि हारवर्ड विश्वविद्यालय के विरोध के बावजूद शैक्षणिक रंगमंच ने 1956 में अपनी स्वर्ण जयन्ती मनाई। 1956 में ही चार सौ विश्वविद्यालयों और कालेजों ने रंगमंच कला के स्नातक पाठयक्रम की व्यवस्था की। उस समय कोई पन्द्रह हजार स्त्री-पुरुष शैक्षणिक रंगमंच के अध्यापन अथवा उससे सम्बद्ध टैकनीकल कार्य के माध्यम से अपना जीवन-निर्वाह कर रहे थे। 1929 की आर्थिक मन्दी के बाद से एक भी व्यावसायिक रंगशाला का निर्माण नहीं हुआ, किन्तु विश्वविद्यालयों और कालेजों ने कम से कम पचास रंगशालाएं बनाई हैं और ये अमेरिका की सबसे सुसज्जित रंगशालाएं हैं।

मैं उपर्युक्त विवरण यह दिखाने के लिये दे रही हूं कि अमेरिका में शैक्षणिक रंगमंच सृजनात्मक और रचनात्मक है तथा भावी रंगमंच पर इसका स्थायी प्रभाव रहेगा। आज यह इतना शक्तिशाली है कि कोई भी व्यावसायिक सामूहिक मनोरंजन इसकी प्रगति में बाधक नहीं हो सकता।

यह मानना भूल होगी कि शैक्षणिक रंगमंच किसी प्रकार का व्यावसायिक प्रशिक्षण है यदि संयोगवश कुछ प्रतिभाशाली व्यक्ति किसी विषय का पूर्ण प्रशिक्षण इस प्रकार प्राप्त कर सकते हैं, जिससे कि वे अध्ययन के साथ कमा भी सकें तो यह एक अच्छी ही बात है, किन्तु शैक्षणिक रंगमंच के पक्ष में सबसे बड़ी बात यह है कि यह विद्यार्थियों की कलात्मक प्रतिभा की अभिव्यक्ति के लिये अवसर प्रदान करता है और आजकल विद्यार्थी जगत् में इस प्रतिभा का बड़ा अभाव है। उच्च शिक्षा में साहित्यिक एवं वैज्ञानिक प्रतिभा पर अधिक बल दिया जाता है और अनेक उच्च शिक्षा प्राप्त विद्यार्थी कालेज छोड़ते समय कला से बिल्कुल अनभिज्ञ होते हैं, और उन्हें कला की परख तथा उसका मूल्यांकन वैसे ही अपनी समझ से करना होता है अन्यथा वह "लोकतंत्री संस्कृति" के प्रवाह में बह जाते हैं, जिस की संसार में आजकल बाढ़ सी आई हुई है।

मैं अंत में शैक्षणिक रंगमंच के पक्ष में "चैंज एंड प्रोसेज़" के लेखक डाक्टर मैलकम सी० मैकलीन और डीन ऐडविन ए० ली के शब्द उद्धृत करती हूं, जो अमेरिकी शैक्षणिक रंगमंच संस्था के 1956 के शिकागो सम्मेलन में केनेथ मैकगोवन के भाषण से लिये गए हैं। भाषण का वह अंश इस प्रकार है :

"बहुत दिनों तक कलात्मक प्रतिभा न केवल अव्यावसायिक समझी जाती थी, बल्कि उसे साहित्यिक एवं वैज्ञानिक प्रतिभा से निम्नस्तर का भी माना जाता था। शुरू में अमेरिका में विशुद्धवाद और नई दिशाओं की खोज पर बल दिए जाने से शिक्षा के क्षेत्र में कला का विकास प्रायः अवरुद्ध हो गया। सृजनात्मक प्रतिभा के तत्वों के विषय में मैकलीन और ली का कहना है कि कला के रस-ग्रहण में प्रतिक्रिया मनोविज्ञान तथा शिक्षा की दृष्टि से तात्कालिक और अस्थायी भी हो सकती है या गहरी एवं चिरस्थायी भी। यह स्पष्ट है कि कलात्मक अनुभूति का मानव व्यक्तित्व के विकास पर गहरा असर पड़ता है। कलात्मक अनुभूति मानव भावनाओं को समृद्ध करती है, मानसिक तनाव को समाप्त करती है और जीवन की सार्थकता का संदेश देती है। इसके अतिरिक्त वह जातियों के बीच भेद-भाव समाप्त करके जीवन को सुखी बनाती है और व्यक्तियों तथा राष्ट्रों को निखारती है और उन्हें गौरव एवं शक्ति प्रदान करती है।

—नोरा रिचर्ड्स
(अनु० कान्ताप्रसाद सिंहल)

compiled and created by Bhartesh Mishra

: दो :

भारत का व्यावसायिक रंगमंच

भारत में आधुनिक व्यावसायिक रंगमंच का नवोन्मेष करना बड़ा ही जटिल समस्या है, क्योंकि इस दिशा में प्रायः नए सिरे से ही प्रयत्न करने होंगे। जिन व्यावसायिक नाट्य मंडलियों की कुछ वर्ष पहले तक देश में धूम मची हुई थी, वे ऐतिहासिक परिस्थितियों के कारण लुप्तप्राय हो गई हैं। भारतीय रंगमंच के विषय में यह बात विशेष रूप से ध्यान देने योग्य है कि नाटक आदि में भाग लेना निम्न जातियों के लोगों का ही कार्य समझा जाता था और सम्मानित तथा पुराने विचारों वाला कोई परिवार अपने किसी सदस्य का किसी व्यावसायिक अथवा शौकिया नाट्यमंडली में सम्मिलित होना सहन नहीं करता था। स्त्रियों पर तो विशेष रूप से कड़ा प्रतिबन्ध था और स्त्रियों की भूमिका में अधिकतर पुरुष ही मंच पर अवतरित होते थे।

इधर तो ये सामाजिक प्रतिबन्ध चल रहे थे और उधर 1929-30 में भारत में बोलती फिल्मों का युग शुरू हुआ। व्यावसायिक मंडलियां यह आघात सहन न कर सकीं और नाट्यशालाएं धड़ाधड़ सिनेमा-गृहों में परिवर्तित होने लगीं। निःसंदेह कुछ ऐसा ही घटना चक्र संसार के अन्य देशों में भी चला, किन्तु भारत में तो इसने व्यावसायिक रंगमंच की नींव ही हिला दी। उदाहरण के लिए 1930 से पहले गुजरात और महाराष्ट्र में तीस-चालीस व्यावसायिक नाटक कम्पनियां थीं, किन्तु आज उनकी संख्या केवल दो है, ये दो भी आधुनिक दृष्टि से अत्यन्त पिछड़ी हुई हैं।

इसके अतिरिक्त जो लोग रंगमंच की ओर आकृष्ट थे भी, उन्हें भी अन्य देशों के व्यावसायिक रंगमंच को देखने का अवसर शायद ही कभी मिल सका हो। रंगमंच के दर्शक सिनेमा की ओर आकृष्ट होने लगे। व्यावसायिक रंगमंच के ह्रास का सबसे बड़ा कारण तो यह था कि उपनिवेशों के निरंकुश शासन में राष्ट्रीय संस्कृति को कोई विशेष प्रोत्साहन नहीं मिलता था।

ऐसी परिस्थिति में भारतीय रंगमंच का पुनरुत्थान करने वालों को आज वास्तव में बहुत कुछ करना है। उन्हें न केवल नए अभिनेताओं को प्रशिक्षित करके नाटक प्रस्तुत करने हैं, अपितु नई रंगशालाओं का निर्माण भी कराना है, रंगमंच शिल्पियों और अन्य कर्मचारियों को खोजना और उन्हें प्रशिक्षित करना है, रंगमंच के प्रति लोगों की संस्कारगत द्वेष और सन्देह की भावना को दूर करना है तथा नवीन रंगमंच की ओर दर्शकों को आकृष्ट भी क है। निःसंदेह यह बड़ा ही गम्भीर और जटिल कार्य है और इसमें पि तीस वर्ष से जुटे हुए लोग 1947 तक अधिक प्रगति नहीं कर स केवल पिछले दस वर्षों में ही रंगमंच के विभिन्न क्षेत्रों में तेजी से प्र हुई है।

बम्बई नगर में सच्चे मानों में अब भी केवल दो ही व्य सायिक नाटक कम्पनियां हैं, एक हिन्दी में नाटक प्रस्तुत करने व पृथ्वीराज का नाट्य मंडल है और दूसरा भांगवाड़ी गुजराती ना मंडल। केछेवाड़ी के मराठी नाट्य-मंडल में अनेक व्यावसायिक अ नेता आदि हैं, किन्तु यह कोई स्थायी व्यावसायिक कम्पनी नहीं है कलकत्ते में तीन व्यावसायिक नाटक कम्पनियां हैं और मा में जहां तक मेरी जानकारी है, ऐसी एक ही कम्पनी है। राजध दिल्ली में अब नया हिन्दुस्तानी थ्येटर है। दूसरी ओर शौकि रंगमंच का आन्दोलन दिन प्रतिदिन जोर पकड़ता जा रहा है अ विभिन्न राष्ट्रीय राज्योत्सवों में प्रति वर्ष अधिकाधिक दल सम नाटक प्रस्तुत कर रहे हैं और सामान्यतया स्तर ऊंचा उठ रहा है। इंडि नेशनल थ्येटर (आई० एन० टी०), भारतीय विद्याभवन, शम्भु मि का दल और अन्य नाट्यमंडलियां भी जनता में नाटकों के प्र रुचि उत्पन्न करने में प्रशंसनीय योग दे रही हैं। बम्बई की थ्ये यूनिट और थ्येटर ग्रुप जैसी नाट्य मंडलियां भी रंमंगच के विक में सहायता दे रही हैं, किन्तु मंडलियां विशिष्ट सुसंस्कृत वर्ग के दर्श की रुचि के नाटक ही प्रस्तुत करती हैं। रंगमंच के विकास की वर्तम स्थिति में सुसंस्कृत वर्ग के दर्शकों के लिए अति-आधुनिकवादी नाट प्रस्तुत करने की अपेक्षा ऐसे नाटकों का प्रदर्शन ज्यादा जरूरी है, जि सभी वर्गों के दर्शक समझ सकें और रंगमंच को लोकप्रिय बनाया सके। अति-आधुनिकवादी नाटक केवल दो तीन बार प्रस्तुत कि जा सकते हैं और उनका आनन्द थोड़े से लोग ही उठा सकते हैं।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि रंगमंच के लिए नए-नए प्रयोग कर वाले दल और मंडलियां बड़ी आवश्यक हैं—ये मंडलियां ही रं मंच का सृजनात्मक अंग होती हैं। किन्तु यह बात सदैव याद रख होगी कि वे बिना समुचित आधार के नहीं पनप सकतीं। उच्चस्त का कलात्मक रंगमंच तभी सम्भव है जबकि सामान्य रंगमंच का विका हो चुका हो और लोकप्रिय नाटक तथा मनोरंजक कार्यक्रम काफ संख्या में और नियमित रूप से प्रस्तुत किए जाते हों।

compiled and created by Bhartesh Mishra

कुछ मंडलियों के नाटक पच्चीस बार तक अभिनीत हुए हैं। उनके नाटकों की संख्या और विविधता बढ़ती जा रही है। रंगमंच का निर्माण इसी प्रकार होगा और आगे चलकर व्यावसायिक कम्पनियां भारतीय सांस्कृतिक जीवन का अभिन्न अंग बन जाएंगी। किन्तु इस प्रसंग में यह बात नहीं भुलाई जानी चाहिए कि भांगवाड़ी मंडली के नाटक तीन-तीन सौ बार खेले जा चुके हैं और कलकत्ते के बंगला व्यावसायिक मंडलियों के बारे में भी कुछ ऐसा ही कहा जा सकता है।

एक और महत्वपूर्ण बात यह है कि ये केन्द्र पृथ्वीराज की भांति समसामयिक नाटक प्रस्तुत करते हैं। किन्तु इनका भी अपनी-अपनी डफली और अपना-अपना राग है। असली रंगमंच किन्हीं राष्ट्रीय सीमाओं से नहीं बंधा होता, वह तो अन्तर्राष्ट्रीय होता है। अतएव भारत की राष्ट्रीय नाट्य संस्थाओं को संसार भर के सर्वश्रेष्ठ नाटकों का अनुवाद अपनी-अपनी भाषाओं में करा लेना चाहिए। तभी वे यह अनुभव कर सकेंगे कि उच्च कलात्मकता कहां निहित है, और तभी उनके नाटकों में गहराई आएगी तथा उनका स्तर ऊंचा उठेगा।

सामान्यतया लोगों की प्रवृत्ति अब भी अतिनाटकीयता (मैलो-ड्रामा) की ओर है किन्तु यह कोई निन्दनीय प्रवृत्ति नहीं है, क्योंकि यह अधिकांश भारतीय जनता के जीवन का प्रतिबिम्ब है।

भारत में सुदृढ रंगमंच के लगभग अभाव का एक स्वाभाविक परिणाम यह है कि यहां व्यावसायिक नाट्य लेखकों की भी कमी है। प्रत्येक नाट्य मंडली के लेखक को अपने जीवन निर्वाह के लिए अन्य साधनों पर निर्भर रहना पड़ता है और बड़े पैमाने पर नाटक लिखने के लिए समुचित प्रोत्साहन नहीं मिलता। ऐसी स्थिति में अन्य देशों के नाटकों का अनुवाद अथवा रूपान्तर कराना आवश्यक है। वास्तव में प्रशिक्षण और विकास की प्रारम्भिक अवस्था में यह बड़ा जरूरी है। इसके अतिरिक्त इससे राष्ट्रीय संस्कृति को भी समृद्ध करने में सहायता मिलेगी।

इस प्रसंग में यह उल्लेखनीय है कि जिन पश्चिमी नाट्य लेखकों की सामयिक उपयोगिता यूरोप में समाप्त होती दिखाई देती है, उन्हीं के नाटक भारत में बड़े सामयिक प्रतीत होते हैं। उदाहरण के लिए इब्सन और जार्ज बरनार्ड शा ने रंगमंच के माध्यम से जिन कुरीतियों के विरुद्ध मोर्चा लिया, वे आज भी भारतीय जीवन का अंग बनी हुई हैं। इसलिए राष्ट्रीय रंगमंच को प्रोत्साहन देने के लिए संसार के सर्वश्रेष्ठ नाटकों का सुयोजित ढंग से अनुवाद अथवा रूपान्तर कराने की व्यवस्था की जानी चाहिए।

मुझे यह जान कर बड़ा आश्चर्य हुआ कि जार्ज बरनार्ड शा के "मैन और सुपरमैन" तथा "पिगमैलियन" जैसे उत्कृष्ट नाटकों का अनुवाद नहीं हुआ है, क्योंकि ये बड़े कठिन समझे गए हैं। इससे तो सामान्यतः यह प्रतीत होता है कि वर्तमान रंगमंच ऐसी कोई व्यवस्था नहीं करता, जिससे कि योग्य लेखक इन नाटकों का अनुवाद करने के लिए आकृष्ट हों। खैर, मुझे पता चला है कि अब संगीत नाटक अकादेमी और साहित्य अकादेमी यह कार्य करा रही हैं और उनके उस निर्णय का स्वागत किया जाना चाहिए।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि व्यावसायिक रंगमंच की स्थापना इस मान्यता को लेकर की जाती है कि इसमें भाग लेने वालों को पारिश्रमिक मिलेगा, किन्तु मैंने अब भी उच्चतम क्षेत्रों तक में यह धारणा पाई है कि कलाकार को किसी प्रकार के पारिश्रमिक की आशा किए बिना ही कार्य करना चाहिए। या उसे केवल इस काम में रुचि रखने के ही कारण या केवल सम्मान पाने के ही लिए यह काम करना चाहिए। किन्तु इंजीनियर, आर्किटैक्ट अथवा संसद सदस्य तक से कोई ऐसी आशा नहीं करता कि वे बिना किसी प्रत्याशा के काम करेंगे।

हर व्यवसाय को व्यवसाय का रूप देने के लिए उसके कार्यकर्त्ताओं के वास्ते समुचित पारिश्रमिक की व्यवस्था आवश्यक है। मेरे संरक्षक जार्ज बरनार्ड शा ने एक बार मुझे एक सलाह दी थी और मैं उसे कभी नहीं भूलूंगा। उन्होंने कहा था, "एक कलाकार के नाते तुम अपनी सेवा निःशुल्क कभी प्रस्तुत मत करना। निःशुल्क सेवा का मतलब अपनी कला और अपने साथी कलाकारों के प्रति विश्वासघात करना होगा। यदि तुम धर्मार्थ अथवा किसी संस्था की सहायता के लिए अपनी सेवा अर्पित करना ही चाहते हो, तो तुम उस संस्था को अपनी फीस बता दो, उससे अपनी फीस ले लो और फिर उसे वही धनराशि दान में दे दो। इससे हर कोई यह समझ जाएगा कि तुम्हारी सेवाएं मूल्यवान् हैं और तुमने उनका दान किया है। किन्तु यदि तुम निःशुल्क सेवा अर्पित करोगे तो वह संस्था तुम्हारे दान का कोई महत्व नहीं समझेगी।"

रंगमंच के विकास में योग देने वाली एक अन्य महत्वपूर्ण बात यह है कि इसके प्रति केन्द्रीय और राज्य सरकारों की सहानुभूति दिन-प्रति-दिन बढ़ती जा रही है और वे सक्रिय सहायता दे रही हैं। बम्बई राज्य ने $33\frac{1}{3}$ प्रतिशत कर समाप्त कर के ऐसा ठोस कदम उठाया है जिससे रंगमंच को कोरे भाषणों की अपेक्षा कहीं अधिक सहायता मिलेगी। गोवालिया टैंक में गोकुलदास थ्येटर और बिरला थ्येटर जैसी आधुनिक एवं वातानुकूलित रंगशालाओं का निर्माण व्यावसायिक रंगमंच के विकास की दिशा में वास्तव में बहुत बड़ा कदम है, यद्यपि उनके मंच और पृष्ठमंच में समुचित सुविधाओं का आयोजन नहीं किया गया है।

यह मैं अपने व्यक्तिगत अनुभव के आधार पर कह रहा हूं, क्योंकि मैंने जब कभी व्यावसायिक स्तर के नाटक प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है, तो मैंने देखा है कि गर्मी में काम करने से रंगमंच के बड़े से बड़े प्रेमी का उत्साह ठंडा पड़ जाता है। स्कूलों के हाल में ज़रा-ज़रा से तथाकथित मंचों पर काम करना तो सबसे बड़ी मुसीबत है। इस समय सबसे बड़ी आवश्यकता इस बात की है कि देश में अधिक से अधिक रंगशालाएं बनाई जाएं।

वैज्ञानिक अनुसंधान और सांस्कृतिक कार्य मंत्रालय ने 1961 में रवि ठाकुर जन्म शताब्द जयन्ती समारोह के अवसर पर देश के सभी प्रमुख नगरों में खुले रंगमंच बनाने की योजना के बारे में जो कदम उठाया है, वह विशेष रूप से सराहनीय है।

compiled and created by Bhartesh Mishra

किन्तु इस सम्बन्ध में दो महत्वपूर्ण बातें अवश्य ध्यान में रखी जानी चाहिए, एक तो खुले रंगमंच की योजनाओं को अंतिम रूप से स्वीकृति देने और निर्माण-कार्य शुरू करने से पहले उन्हें रंगमंच विशेषज्ञों को दिखा लेना चाहिए, नहीं तो फिर यही दुखद स्थिति होगी कि धन व्यय करके भी मंच के नाम पर एक ऐसी चीज़ तैयार हो जाएगी जो नाट्य प्रदर्शन के लिए आवश्यक एक भी शर्त पूरी नहीं कर सकेगी । मैं इस सम्बन्ध में 'संस्कृति' के चैत्र, 1881 के अंक में "रंगशाला और भवन-निर्माण विशारद" नामक अपने लेख में उदाहरण सहित विवेचना कर चुका हूं । किन्तु अब मुझे यह जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई है कि मंत्रालय और उसके प्रबन्ध-अधिकारी समस्या के इस पक्ष से अवगत हैं और ऐसे उपाय कर रहे हैं जिससे कि इसकी पुनरावृत्ति न होने पाए ।

परन्तु यदि खुले रंगमंच और अन्य रंगमंच के ठीक-ठीक डिज़ायन तैयार कराके उन्हीं के अनुसार उन्हें बनवा भी दिया जाए तब भी क्या होगा ? हाल ही में मैंने इसकी तुलना एक ऐसे रेसकोर्स से की थी जो बड़ी अच्छी तरह बनाया गया हो, जिसमें दाव लगाने की मशीन रख दी गई हो, जहां जनता आती हो और ऐसे लोग घूमते-फिरते हों, जिनकी रोज़ी घुड़दौड़ पर बाजी लगाने से चलती हो, किन्तु जिसमें रेस के घोड़े न हों । इसमें कोई सन्देह नहीं कि तांगों में जोते जाने वाले टट्टू इकट्ठे किए जा सकते हैं, पर सारी दुनियां जानती है कि रेस के लिए बढ़िया नस्ल के घोड़े होते हैं और उन्हें समुचित ट्रेनिंग तथा अभ्यास की जरूरत होती है ।

इसी प्रकार रंगशालाएं बनाने से तब तक कोई लाभ नहीं है जब तक कि उसके साथ ही साथ नाटक कम्पनियां बनाने में भी सक्रिय सहायता न दी जाए । इस सम्बन्ध में यह बात बिल्कुल स्पष्ट कर देनी होगी कि **ये कम्पनियां व्यावसायिक होनी चाहियें** । यहां इस प्रसंग में मुझे सांस्कृतिक विकास के प्रति सरकार के रवैये में एक कमी नजर आती है । रंगमंच के हर अंग को सहायता और प्रोत्साहन दिया जाता है, किन्तु व्यावसायिक रंगमंच को नहीं । भारत के व्यावसायिक रंग-मंच की स्थिति को देखते हुए यह सचमुच बड़ी विचित्र सी बात है । सांस्कृतिक विकास, विशेषकर रंगमंच की उन्नति के लिए, सरकारी सहायता, संगीत नाटक अकादेमी की मार्फत दी जाती है । हाल ही में उसने अपनी पहली रिपोर्ट प्रकाशित की है । यह रिपोर्ट 1953 से 1958 तक के काल की है । इसमें पृष्ठ 27-34 पर नाटक गोष्ठी की कार्रवाई का विवरण है, जो बंगला रंगमंच के एक प्रमुख स्तम्भ शचीन सेन गुप्त के निर्देशन में 1956 में दिल्ली में हुई थी । इसमें अन्य बातों के साथ-साथ यह भी कहा गया है, "गोष्ठी ने सर्वसम्मति से कुछ प्रस्ताव पास किए और अकादेमी के दिशा-निर्देश के लिए सिफारिशें कीं ।" गोष्ठी का विचार है कि भारत में तब तक कोई प्रभावशाली रंगमंच खड़ा नहीं हो सकता, जब तक कि व्यावसायिक नाटक कम्पनियां आत्म-निर्भर न हो जाएं । वर्तमान स्थिति में व्यावसायिक मंडलियों का अस्तित्व तभी सम्भव है, जब उन्हें सरकार से आगामी अनेक वर्षों तक उदारता से सहायता मिलती रहे । गोष्ठी यह सिफारिश करती है कि व्याव-सायिक नाटक मंडलियों को आर्थिक सहायता और कर्जे दिए जाएं । यह सहायता घूम फिर कर प्रदर्शन करने वाली मंडलियों और स्थ नीय मंडलियों दोनों प्रकार की कम्पनियों को मिलनी चाहिए यह सहायता नकद रुपया और ऋण के रूप में अथवा मोटर बैन जायदाद आदि जैसी सुविधाओं की व्यवस्था के रूप में दी जा सक है ।" यह प्रस्ताव 1956 में पास किया गया था । इस प्रस्ताव अनुसार अब तक कितना धन अथवा कितनी सुविधाएं दी गई हैं

रिपोर्ट के पृष्ठ 71 पर अकादेमी द्वारा दी जाने वाली वित्त सहायता की परिभाषा दी गई है जो इस प्रकार है :

"अकादेमी अपने से सम्बद्ध तथा अपने द्वारा मान्य संस्था और संस्थाओं को निम्नलिखित उद्देश्यों के लिए वित्तीय सहाय देती है:—

(क) नृत्य, नाटक (जिसमें फिल्म भी शामिल है) औ संगीत का उच्च प्रशिक्षण देने के लिए ।

(ख) अनुसंधान और सर्वेक्षण के लिए ।

(ग) संगीत, नृत्य, नाटक, और फिल्म सम्बन्धी महत्व-पूर्ण कृति के तथा इन विषयों से सम्बद्ध पत्रिकाओं के प्रकाश के लिए ।"

अकादेमी अपने कुछ विषयों और विनियमों के अधीन जो वित्त सहायता देती है, उसका उद्देश्य ललित कलाओं के क्षेत्र में सृजनात्म रचना को प्रोत्साहन देना है ।

पांच वर्षों में कुल अनुदान इस प्रकार दिए गए :—

1953-54	75,000 रु०
1954-55	100,000 रु०
1955-56	200,000 रु०
1956-57	261,000 रु०
1957-58	400,000 रु०

आप देखेंगे कि सारे प्रस्तावों के बावजूद इसमें व्यावसायिक रं मंच के बारे में एक भी शब्द नहीं है । नाट्य संस्कृति के मूलाधा के विकास का अथवा उसे आर्थिक सहायता दिए जाने का कोई उल्ले नहीं है । बंगला रंगमंच के वयोवृद्ध कलाकार श्री शिशिर भादुड़ी क जिनका हाल ही में देहान्त हुआ, जीवन के अन्त में वादुता औ निराशा ही हाथ लगी । उन्होंने भारत सरकार द्वारा प्रदत्त प विभूषण की उपाधि को पहले इसलिए अस्वीकार क दिया था कि वह चाहते थे कि व्यावसायिक रंगमंच को मान्य दी जाए और उसकी सहायता की जाए । उनके विचार में इस निर्माण केवल पदकों और लच्छेदार शब्दों से नहीं हो सकता ।

व्यावसायिक रंगमंच के प्रति इस रवैये का क्या कारण है ? मे विचार में इसके दो मूल कारण हैं । एक तो व्यावसायिक रंगमं को व्यापारिक होने के नाते हेय समझा जाता है । अकादेमी उपर्युक्त रिपोर्ट में इसका शीर्षक 'कमर्शियल' दिया गया है ।

ऐसा जान पड़ता है कि सरकारी सहायता पाने की अधिकारी मुख्य तया ऐसी संस्थाएं समझी जाती हैं, जिनका उद्देश्य कोई मुनाफ कमाना नहीं है—अर्थात् शौकिया नाटक मंडलियां । मेरे विचार यह भारी भूल है । शौकिया और व्यावसायिक का प्रश्न मैं आ में लूंगा ।

compiled and created by Bhartesh Mishra

दूसरा कारण यह है कि इन अकादेमियों के सामान्य प्रबन्ध एवं संचालन से जिन भले आदमियों का सम्बन्ध है वे शौकिया रंगमंच एवं कला के इतने अभ्यस्त हैं कि उन्हें व्यावसायिक रंगमंच का अभाव तनिक भी नहीं खटकता और सम्भवतः उन्हें इन दोनों में कोई बड़ा अन्तर प्रतीत नहीं होता ।

मैं अब यह बिल्कुल स्पष्ट कर देना चाहता हूं कि संस्कृति का चाहे कोई भी अंग क्यों न हो, उसका विकास मुख्य रूप से उसके उन व्यावसायिक कलाकारों और कार्मिकों पर निर्भर होता है, जिनकी जीविका कला से ही चलती है और जिन्होंने अपना जीवन ही उसकी साधना में लगा दिया है ।

अकादेमी की गोष्ठी का यह विचार ठीक ही है कि भारत में नाटक के पूर्ण विकास में बड़ी बाधा सजीव नाटक की अविच्छिन्न परम्परा का अभाव है (रिपोर्ट–पृ० 29) । यह निर्विवाद है कि कलाकृतियों का मानदण्ड स्थापित करने और सांस्कृतिक परम्परा को आगे बढ़ाने का काम केवल व्यावसायिक कलाकार ही कर सकते हैं । शौकिया कलाकारों की मंडलियां बनती हैं और टूट जाती हैं, किन्तु व्यावसायिक कलाकार अपनी साधना में निरन्तर जुटा रहता है । वह उसके जीवन और अस्तित्व का उद्देश्य ही जो ठहरा । इसमें किसी को संदेह नहीं होना चाहिए कि उत्कृष्ट कलाकृतियों का सृजन सामान्यतः प्रतिभाशाली व्यावसायिक कलाकारों के कुशल और अभ्यस्त हाथों से ही हो सकता है । ताजमहल का निर्माण अव्यावसायिक वास्तुकर्मज्ञ शिल्पियों और अव्यावसायिक कार्मिकों द्वारा सम्भव नहीं था । नाट्यशास्त्र के अति जटिल और सुनिश्चित नियमों को शौकिया कलाकार मूर्तरूप नहीं दे सकते । संगीत, बैले और आपेरा की विश्व-विख्यात सर्वश्रेष्ठ रचनाओं को व्यावसायिक कलाकारों के अतिरिक्त कोई अन्य व्यक्ति यथोचित रूप में प्रस्तुत नहीं कर सकता । इसी प्रकार संसार के सर्वोत्कृष्ट नाटकों को भी मंच पर केवल व्यावसायिक नाट्य मंडलियां ही ठीक प्रकार से खेल सकती हैं । क्या किसी भवन का नक्शा और डिज़ायन तैयार करने का काम किसी अव्यावसायिक वास्तुकर्मज्ञ के हाथ में देने अथवा ट्राम्बे परमाणु संयंत्र के संचालन का दायित्व किसी शौकिया वैज्ञानिक को सौंपने की कल्पना तक भी की जा सकती है ?

भारतीय रंगमंच के लिए सबसे बड़ी जरूरत इस बात की है कि विभिन्न राज्यों में व्यावसायिक नाटक कम्पनियां खोली जाएं । प्रश्न यह है कि यह कार्य कैसे सम्पन्न हो ? स्पष्ट है कि यह केवल व्यक्तिगत प्रयत्नों द्वारा पूरा नहीं हो सकता । ब्रिटेन में भी, जहां व्यक्तिगत प्रयत्नों की प्रधानता है, अब सरकार एक प्रमुख आपेरा और बैले तथा थ्येटर संस्थाओं को वित्तीय सहायता दे रही है । कौमेडी फ्रांसेज और मास्को आर्ट थ्येटर जैसी संसार-प्रसिद्ध संस्थाएं और यूरोप की समस्त बड़ी-बड़ी नाटक कम्पनियां पूर्णतया सरकार द्वारा पोषित हैं ।

मैं निम्नलिखित ठोस सुझाव प्रस्तुत करना चाहता हूं :

(एक) सरकार ऐसी संस्थाओं को वित्तीय सहायता दे, जिन्होंने अपने प्रयत्नों से यह सिद्ध कर दिखाया है कि वे व्यावसायिक रंगमंच स्थापित करने में संलग्न हैं । शम्भुमित्र का बहुरूपी, अलकाजी का थ्येटर यूनिट, मराठी संघ मंदिर और बम्बई नाट्य संघ थ्येटर कम्पनी उल्लेखनीय उदाहरण हैं । ऐसी अन्य अनेक संस्थाएं हैं ।

(दो) ऐसी कम्पनी अथवा संस्था अपनी दो वर्ष की योजना पेश करे । वह कम से कम चार नाटक प्रति वर्ष प्रस्तुत करे और एक 1961 में रवीन्द्र शताब्द-जयन्ती के अवसर पर । कम्पनी अथवा संस्था के आय-व्यय का बजट तैयार किया जाए और वित्तीय सहायता दो वर्ष के लिए हर तीन महीने बाद दी जाए । पहली तिमाही को धनराशि अग्रिम दी जा सकती है और जब वह संस्था अथवा कम्पनी पहला नाटक प्रस्तुत कर दे, तब उसे दूसरी तिमाही के लिए सहायता दी जाए और इसी प्रकार यह क्रम चलता रहे ।

(तीन) कम्पनी अथवा संस्था यह वचन दे कि वह सरकार और संगीत नाटक अकादेमी तथा भारतीय नाट्य संघ आदि जैसी संस्थाओं के साथ सहयोग करके अपने सम्बद्ध भाषा क्षेत्र में दौरा करने को तैयार है ।

(चार) ऐसी कम्पनियां अथवा संस्थाएं उन नाटकों की सूची दें, जो वे रंगमंच पर प्रस्तुत करेंगी । इसमें विश्व के सर्वोत्तम नाटक और भारतीय नाटक दोनों ही शामिल होने चाहिएं । उन्हें भारतीय नाट्य लेखकों को नाटक लिखने तथा संसार की अन्य भाषाओं के प्रसिद्ध नाटकों का अपनी भाषा में अनुवाद करने अथवा उन्हें रूपान्तरित करने के लिए प्रोत्साहन देने की व्यवस्था करनी चाहिए ।

(पांच) उन्हें वर्तमान अकादेमियों और प्रशिक्षण संस्थाओं के साथ निकट सम्पर्क रखना चाहिए, जिससे वे रंगमंच के विद्यार्थियों का उपभोग कर सकें, उन्हें व्यावहारिक अनुभव प्रदान कर सकें और उनमें से अपने लिए भावी व्यावसायिक कलाकार चुन सकें ।

इन दो वर्षों की समाप्ति पर उनसे कहा जाए कि उन्हें अगले दो वर्षों में अब से आधी वित्तीय सहायता मिलेगी और वे उसी से अपना काम चलाएं । इन चार वर्षों की वित्तीय सहायता के उपरान्त मंत्रालय यह निर्णय कर सकता है कि अमुक-अमुक कम्पनियों को सहायता दी जानी चाहिए अथवा नहीं और यदि हां, तो कितनी । जो कम्पनियां पहले या दूसरे वर्ष के अन्त तक चलती रहेंगी वे अपने स्वस्थ विकास का परिचायक होंगी । उन्हें सम्बद्ध राज्य सरकारों, म्युनिसिपल संस्थाओं और सांस्कृतिक विकास में सहायता देने वाली गैरसरकारी संस्थाओं द्वारा सहायता मिलनी चाहिए । साथ ही लोगों में रंगमंच के प्रति रुचि उत्पन्न करके दर्शक समाज का संगठन करने के लिए निश्चित योजनाएं तैयार की जानी चाहिएं । यह स्पष्ट है कि लोगों को आज सिनेमा देखने की जैसी आदत है, वैसी नाटक देखने की आदत आसानी से नहीं पड़ सकती । किन्तु ऐसी आदत डाली जानी चाहिए । दर्शक समाज के संगठन की दिशा में ओल्ड विक और उसका विक वैल्स ऐसोसियेशन, बर्लिन के फौक्सबुन, और सोवियत संघ के सरकारी थ्येटरों आदि के अनुभवों से लाभ उठाया जा सकता है । मुझे इन सभी क्षेत्रों का अनुभव है और मैं इस प्रकार की योजनाओं के लिए विशेष परामर्श देने को सहर्ष प्रस्तुत हूं । नवनिर्मित व्यावसायिक कम्पनियों को लोकप्रिय बनाने के लिए समाचारपत्र, रेडियो और टेलीविज़न––प्रचार के सभी साधनों का उपयोग करना होगा ।

compiled and created by Bhartesh Mishra

जब कम्पनियां काफी उच्चस्तर के नाटक प्रस्तुत करने लगें, तो उन्हें विदेशों में जाकर अपनी कला का प्रदर्शन करने के लिए भी प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। यह बड़ी ही खेदजनक स्थिति है कि इस समय भारत विदेशों को ऐसी कोई नाटक कम्पनी नहीं भेज सकता, जिसे सच्चे मानों में उसको प्रतिनिधि कम्पनी कहा जा सके।

व्यावसायिक मंडलियों को वित्तीय सहायता के साथ ही साथ अपने नाटकों के प्रदर्शन के लिए भावी खुली रंगशालाएं तथा अन्य नाट्यशालाएं देने में प्राथमिकता दी जाए और उनका उनसे नाम मात्र के लिए किराया लिया जाए। ऐसी व्यवस्था की जाए, जिससे कि ये मंडलियां सारे साल में समय-समय पर नाट्यशालाओं का उपयोग कर सकें और उनका किराया टिकटों की बिक्री से होने वाली आय का एक पूर्वनिश्चित भाग हो।

अपनी नाट्यशाला के बिना न तो कोई नाटक कम्पनी जंचती है और न ही नाटक कम्पनी के बिना कोई नाट्यशाला। इस समय इ प्रकार के भवनों का बहुत अधिक किराया है और अधिकतर अव्याव सायिक नाट्य संस्थाओं के लिए उनका उपयोग करना प्रायः असम्भव ही होता है। इस सम्बन्ध में यह बात भी अनुभव की गई है कि यदि किसी नाटक कम्पनी का अपना कोई स्थायी भवन हो तो वह नाट्य क्रिया-कलापों में रुचि लेने वाले व्यक्तियों का केन्द्र बन जाता है। मेरा अपना अनुभव है कि यदि किसी थ्येटर का अपना रेस्टोरेंट, व्याख्यान भवन, अपनी कला वीथी और रिहर्सल कक्ष हों तो वह एक सांस्कृतिक केन्द्र का रूप धारण कर लेता है, जिसके कार्य-कलापों में अनेक लोग सदा ही योग देने के लिए तत्पर रहते हैं। संसार की सबसे बड़ी और प्रसिद्ध नाटक कम्पनियों की अपनी स्थायी नाट्यशालाएं और स्कूल हैं। कौमेडी फ्रांसेज़ का पेरिस में सदियों से अपना थ्येटर है और मास्को के मेली थ्येटर के पास लगभग डेढ़ सौ वर्ष से अपनी नाटयशाला है। संसार के अन्य भागों में भी यही स्थिति है।

----हर्बर्ट मार्शल

(अनु० कान्ताप्रसाद सिंहल)

compiled and created by Bhartesh Mishra

: तीन :

राजधानी का रंगमंच

वार्षिक सर्वेक्षण

पिछले एक दशक में दिल्ली में जिस प्रकार नाटकीय गतिविधियों का विस्तार और विकास हुआ है उससे सहज ही इस बात का बोध हो जाता है कि भारतीय रंगमंच पुनर्जागरण और नव-निर्माण के युग से गुजर रहा है । नाटक के सभी क्षेत्रों और कलापक्षों में नयी शक्तियों का उन्मेष दिखायी दे रहा है, और उनके प्रतिफल से भारतीय नाटक और नृत्य-परम्परा पुष्ट और सम्पन्न हो रही है । इस एक दशक के इतिहास में गत वर्ष का कई दृष्टियों से बहुत बड़ा महत्व है । शायद, पिछले किसी एक वर्ष में दिल्ली में रंग-मंचीय कार्यकलाप——परिमाण और गुण——दोनों दृष्टियों से इतना महत्वपूर्ण नहीं था। इस वर्ष को हम नाटक-प्रतियोगिता और समारोहों का वर्ष कह सकते हैं।

प्रतियोगताएं और समारोह

गत वर्ष की नाटकीय गति-विधियों की सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि संगीत नाटक अकादेमी द्वारा आयोजित हिन्दी नाट्य-प्रदर्शन की प्रतियोगिता हुई, जिसमें देश के विभिन्न भागों के हिन्दी नाट्य-दलों ने भाग लिया । इस प्रदर्शन-प्रतियोगिता के साथ ही साथ इसी वर्ष अकादेमी ने श्रेष्ठ हिन्दी नाटक प्रतियोगिता का भी आयोजन किया । इन प्रतियोगिताओं के साथ-साथ आल इंडिया रेडियो के 'गीत और नाटक विभाग' द्वारा आयोजित चौथा ग्रीष्मकालीन नाटक समारोह भी हुआ । प्रत्येक वर्ष की तरह इस वर्ष भी 'दिल्ली नाट्य संघ' ने वार्षिक नाटक समारोह का आयोजन किया, जो सितम्बर, 1958 से मार्च, 1959 तक चला, और जिसके अन्तर्गत अंग्रेजी, हिन्दी , बंगला, तेलुगु और पंजाबी आदि विभिन्न भाषाओं के पच्चीस नाटकों का प्रदर्शन हुआ इन नाटक प्रतियोगिताओं और समारोहों के सम्बन्ध में हम बाद में विस्तार से चर्चा करेंगे। यहां इस प्रसंग में गत वर्ष के कुछ और ऐसे तथ्यों की चर्चा उपयुक्त होगी जिनका रंगमंचीय कार्यकलाप में महत्वपूर्ण योगदान है।

नए दल और प्रादेशिक भाषाओं के नाटक

इस सम्बन्ध में हम नए और अधिक समर्थ नाट्य-दलों के निर्माण की चर्चा सबसे पहले कर सकते हैं। इसके साथ-ही-साथ पुराने नाट्य-दलों ने अपने को पहले से अधिक संगठित किया, वे अधिक साधन-सम्पन्न हुए, कुछ अव्यावसायिक नाट्य-दल अर्ध-व्यावसायिक रूप से काम करने लगे, एक तो उन्होंने नियमित रूप से पहले से अधिक संख्या में नाट्य प्रदर्शन किए, और दूसरे अपने कलाकारों, विशेषकर अभिनेताओं को कुछ आंशिक रूप से पारिश्रमिक भी प्रदान किया । नव-संगठित नाट्यदलों में उल्लेखनीय बात यह है कि हिन्दी के अतिरिक्त अन्य भारतीय भाषाओं——बंगला और तेलुगु आदि के नाट्य-दल पहले से अधिक व्यवस्थित हुए, और उनके प्रदर्शनों का स्तर भी अधिक ऊंचा रहा ।

नाट्य-प्रदर्शनों के सम्बन्ध में यह तथ्य उल्लेखनीय है कि नाटकों के चुनाव में हम बड़ी विविधता देखते हैं। अभिनेय नाटकों के अभाव को दूर करने के लिए कई प्रकार के गम्भीर प्रयत्न किए गए, जिनमें अंग्रेजी और संस्कृत नाटकों के अनुवादों और रूपान्तरों के अतिरिक्त गुजराती, मराठी और बंगला आदि भारतीय भाषाओं के हिन्दी अनुवाद और रूपान्तर भी किए गए । गत वर्ष पहली बार अंग्रेजी नाटकों के बहुत-ही ऊंचे स्तर के प्रदर्शन हुए और कुछ ऐसे आधुनिक नाटक प्रदर्शित किए गए जिनकी विदेशों में धूम है । सीधे गद्य-नाटकों के अतिरिक्त दूसरे नाट्य-प्रकारों, जैसे नृत्य नाटक और कठपुतली नाटक आदि में भी नए और महत्वपूर्ण प्रयोग किए गए । समीक्षाधीन वर्ष में नाटकीय कार्यकलाप का विस्तार और उसकी विविधता इतनी अधिक थी कि एक ओर तो दर्शक अमरीकी दल द्वारा प्रदर्शित 'हालीडे आन आइस' (बर्फ की रंगरलियां) देख रहे थे, और दूसरी ओर हाथरस और मथुरा की नौटंकी और रास-मंडलियां पुरानी दिल्ली के चौराहों, बगीचों और यमुना के घाटों पर अपने प्रदर्शन प्रस्तुत कर रही थीं । समीक्षाधीन वर्ष की एक और महत्वपूर्ण घटना यह है कि संगीत नाटक अकादेमी के तत्वावधान में एक राष्ट्रीय नाटक विद्यापीठ आरम्भ हुआ । नाटकीय कार्यकलाप के इस सारे विस्तार के साथ-ही-साथ दो अन्य बातों का उल्लेख समीचीन होगा——एक तो यह कि नाटक का दर्शक-वर्ग पहले से अधिक विस्तृत और संगठित हुआ है, और दूसरे यह कि रंगशालाओं का अभाव अब भी नाटक की प्रगति में बाधक बना हुआ है।

हिन्दी नाट्य-प्रदर्शन प्रतियोगिता

21 अप्रैल से 7 मई, 1959 तक संगीत नाटक अकादेमी द्वारा आयोजित हिन्दी नाट्य प्रदर्शन प्रतियोगिता हुई । इस प्रतियोगिता में नौ नाट्य-दलों ने भाग लिया, जिनमें दिल्ली के अतिरिक्त इलाहाबाद, पटना, कलकत्ता, पूना, बम्बई और एलुरु (आन्ध्र

compiled and created by Bhartesh Mishra

प्रदेश) के नाट्य-दल सम्मिलित हुए । इस सम्बन्ध में यह बात उल्लेखनीय है कि हिन्दी क्षेत्र के अतिरिक्त अहिन्दी क्षेत्रों के नाट्य-दलों ने भी इस प्रतियोगिता में भाग लिया, और कलकत्ते के जिस 'अनामिका' दल को 'नए हाथ' नाटक के प्रदर्शन पर पुरस्कार प्राप्त हुआ उसके अभिनेताओं में हिन्दी के अतिरिक्त उड़िया, बंगला और पंजाबी आदि भाषा-भाषी कलाकार भी थे । इस प्रतियोगिता के सम्बन्ध में दूसरी उल्लेखनीय बात यह है कि इसमें अकेला एक कोणार्क ही ऐसा नाटक था जो हिन्दी के पिछले साहित्यिक नाटकों में से लिया गया था । इसके अतिरिक्त अधिकांश नाटक नाट्य-दलों के ही अभिनेताओं और निर्देशकों द्वारा लिखे गए थे, और उनमें इस बात का प्रयत्न दिखायी देता है कि वे रंगशाला के प्रति अधिक निष्ठावान् हैं, उनमें भले ही उच्चकोटि के साहित्यिक गुणों का अभाव हो, किन्तु इसमें संदेह नहीं है कि वे अभिनेता के गुणों से कई प्रकार से सम्पन्न हैं। इस प्रतियोगिता ने पहली बार हिन्दी रंगमंच के समसामयिक तत्वों, प्रदर्शन-प्रवृत्तियों और रंगमंच की दूसरी कलाओं का पूरा-पूरा परिचय दिया । यह बात अपने आप में बहुत-ही महत्वपूर्ण है कि धीरे-धीरे प्रदर्शन कला के कुछ निश्चित भारतीय तत्व और परम्पराएं विकसित हो रही हैं, साथ-ही प्रत्येक क्षेत्र की अपनी नाट्य-परम्परा के प्रभाव से प्रदर्शन में जो स्थानीय विविधता मिलती है, वह भी अपने आप में कला की दृष्टि से रोचक है।

इस प्रतियोगिता द्वारा हमारी प्रदर्शन-पद्धतियों, कलाओं और दूसरे रंगमंच-तत्वों के सम्बन्ध में कुछ बड़े उपयोगी तथ्य सामने आये, और पिछले एक दशक की उपलब्धियों का भी हम ठीक-ठीक मूल्यांकन कर सके । प्रदर्शित किए जाने वाले ये अधिकांश नाटक नाटकीय और साहित्यिक तत्वों से क्षीण रहे हैं और इसी-लिए अभिनय और प्रदर्शन के अन्य साधनों के सम्पन्न और विकसित होने पर भी हमारे नाट्य-प्रदर्शन अभी तक अभीष्ट स्तर तक नहीं पहुंच सके । यद्यपि यह प्रतियोगिता मूलतः प्रदर्शन की प्रतियोगिता थी, किन्तु निर्णायकों के लिए यह कठिन हो गया कि वे प्रदर्शन को नाटकों से बिलकुल अलग करके देख सकें क्योंकि उनमें प्रदर्शन की कमजोरी का कारण प्रायः कमजोर नाटक ही थे । इस सम्बन्ध में दूसरी बात जो सामने आयी वह यह थी कि यद्यपि पिछले एक दशक में हमारे देश में भी रंगमंचीय कार्यकलाप में निर्देशक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त करता जा रहा है, फिर भी वह अभी तक पूरी तरह से साधन-संपन्न नहीं है और अपने दायित्व का निर्वाह कर सकने में असमर्थ है । बहुत कम प्रदर्शनों में निर्देशक पूरे नाट्य-प्रदर्शन को एक कलात्मक समन्विति देने में सफल हो सके । तीसरी बात यह सामने आयी कि यद्यपि हमारे देश में अच्छे स्तर के अभिनेता उपलब्ध हैं, तथापि उनके प्रशिक्षण का कोई वैज्ञानिक प्रबन्ध न होने के कारण, और नाट्य-प्रदर्शनों में दूसरे प्रकार की सामान्य व्यावहारिक सुविधाएं न मिलने के कारण उनकी कला का पूरा-पूरा उपयोग और प्रस्फुटन नहीं हो रहा है । इस सम्बन्ध में कुछ दोष हमारे निर्देशकों का भी है कि वे प्रायः अभिनेता की कला का पूरा-पूरा उपयोग कर पाने में असमर्थ होते हैं। चौथी बात जो सामने आयी, वह यह है कि रंग-सज्जा की वर्तमान पद्धति यथार्थ-मूलक है, और अधिकांश [illegible] में निर्देशक पूरी-पूरी वास्तविक दृश्य-सज्जा प्रस्तुत करना पसंद करते हैं । यद्यपि हमारे रंगमंचीय कार्यकलाप में रंगसज्जा [illegible] का स्वतन्त्र स्थान नहीं बन पाया है । फिर भी धीरे-धीरे वह महत्व [illegible] होता जा रहा है, और नाट्य-प्रदर्शनों में उसकी उपयोगिता बढ़ती जा रही है । नाट्य-प्रदर्शन के दूसरे गौण तत्व जैसे—संगीत और प्रकाश-योजना आदि के सम्बन्ध में जो प्रवृत्तियां इस प्रतियोगिता में सामने आयीं, उनसे इस बात का आभास होता है कि धीरे-धीरे भविष्य में इनका और अधिक विकास होगा और ये नाट्य-प्रदर्शन को अधिक कला-समृद्ध बना सकेंगे । यद्यपि अभी प्रायः प्रकाश-योजना का प्रयोग कुछ चमत्कारी और कौतुकी रीति से ही करने का मोह निर्देशकों में पाया जाता है, किन्तु इसके अधिक कलात्मक और गम्भीर प्रयोगों की भी परम्परा धीरे-धीरे बन रही है।

चौथा ग्रीष्मकालीन नाटक समारोह

'गीत और नाटक विभाग' ने प्रत्येक वर्ष के समान इस वर्ष भी पन्द्रह अप्रैल से दस मई 1959 तक चौथे ग्रीष्मकालीन नाटक समारोह का आयोजन किया । यह समारोह प्रत्येक वर्ष के समान ही 'तालकटोरा गार्डेन' के खुले रंगमंच में किया गया । इसमें हिन्दी के मौलिक नाटकों के अतिरिक्त संस्कृत से अनूदित हिन्दी नाटक तथा गुजराती, बंगला और तेलुगु आदि भारतीय भाषाओं के नाटक तथा नृत्य और गीत-नाटक प्रस्तुत किए गए । यह नाटक समारोह प्रत्येक वर्ष देश के विभिन्न भागों के नाट्य-रूपों और रंगमंच की प्रदर्शन-शैलियों की झांकी प्रस्तुत करता है और अनेक भारतीय भाषाओं में नाटक प्रस्तुत करके एक ही रंगस्थली में विविध भाषा-भाषी दर्शक-समाज एकत्रित करता है । इसके अतिरिक्त इस नाटक समारोह का एक बड़ा भारी योगदान यह है कि नाटक के टिकटों का दाम कम से कम रख कर यह दर्शकवर्ग के निर्माण और उसके विस्तार का बहुत-ही उपयोगी कार्य कर रहा है । इस समारोह में गत वर्ष अहमदाबाद की नाट्य-संस्था 'नट-मंडल' के प्रसिद्ध गुजराती नाटक "मैं गुर्जरी" का प्रदर्शन किया गया। इस नाटक में लोक नाट्य-रूप को जिस कलाकौशल के साथ नया और आधुनिक रूप दिया गया है, वह लोक नाटकों के पुनर्वासन और पुनःसंगठन के लिए एक प्रकार का आदर्श उपस्थित करता है। इस समारोह के अन्तर्गत भवभूति के संस्कृत नाटक "मालती-माधव" का हिन्दी अनुवाद भी प्रस्तुत किया गया ।

दिल्ली नाट्य-संघ नाटक समारोह

राजधानी में इतने अधिक और विस्तृत रंगमंचीय कार्यकलाप का नियमन और संगठन बहुत अंशों तक दिल्ली नाट्य-संघ द्वारा प्रतिवर्ष आयोजित वार्षिक नाटक समारोह द्वारा होता है । यह समारोह सितम्बर के पहले सप्ताह में आरम्भ होकर मार्च के पहले सप्ताह में समाप्त होता है। गतवर्ष इस नाटक समारोह के अन्तर्गत कुल पच्चीस नाट्य प्रदर्शन हुए, जिनमें दस नाटक हिन्दी के थे, आठ अंग्रेजी के, चार बंगला के, दो तेलुगु और एक

compiled and created by Bhartesh Mishra

पंजाबी का । चौबीस स्थानीय नाट्य-दल इस समारोह में सम्मिलित हुए और उन्होंने नाटकों का प्रदर्शन किया । प्रत्येक वर्ष इस प्रकार की प्रतियोगिता और पुरस्कारों के आयोजन से राजधानी में रंग-मंच को बहुत बड़ा प्रोत्साहन मिल रहा है। इसका सबसे बड़ा लाभ तो यह है कि नाट्य-संघ पुरस्कारों के लिए रंगमंच के अनेक कला-पक्षों---जैसे निर्देशन, प्रस्तुतीकरण, रंगसज्जा, नाट्य-लेखन और अभिनय आदि पर पुरस्कार की व्यवस्था करता है, और इस तरह रंगमंच की अनुषंगी कलाओं को प्रोत्साहन मिल रहा है जिससे उनके कलात्मक रूप धीरे-धीरे विकसित हो रहे हैं और स्तर ऊंचे हो रहे हैं। भारतीय रंगमंच परंपरा से सम्बद्ध रह कर भी रंगमंच के अनेक आधुनिक वैज्ञानिक उपादानों और कला माध्यमों से अपने को वंचित नहीं रख सकता । अतः हमारी सबसे प्रमुख समस्या परम्परा से सम्बद्ध रह कर नाट्य-प्रदर्शन की नयी कला-सामग्री और सिद्धान्तों को स्वीकार करने और उनको भली-भांति समन्वित करने की है। शायद, कुछ अंशों तक हमको प्रदर्शन के वैज्ञानिक साधनों और सामग्री का अपनी विशिष्ट परि-स्थितियों और कला-संस्कृतियों के अनुरूप रूपान्तरण करना होगा और उनके नए रूप रचने होंगे।

अन्य भारतीय भाषाओं के नाटक

समीक्षाधीन वर्ष की एक विशेषता यह है कि इस वर्ष अधिक संख्या में बंगला, तेलुगु, पंजाबी आदि भारतीय भाषाओं के नाटक प्रस्तुत किए गए । इन नाटकों में पुतुल खेला, नीचेर महल, कप्पालु, राग-रागिनी, छलेडा और कनक दो बल्ली उल्लेखनीय हैं। राजधानी में रहने वाले विभिन्न भाषा-भाषी धीरे-धीरे अपनी-अपनी भाषाओं के नाट्य-दलों का संगठन कर रहे हैं, और अपनी भाषाओं के नाटकों के प्रदर्शन में पहले से अधिक गम्भीर प्रयत्न कर रहे हैं । गत वर्ष इस प्रकार के कई नए नाट्य-दल संगठित हुए, और उनका भविष्य इस बात से आशावान् लगता है कि उनके प्रदर्शनों के लिए दर्शक-समाज सहज सुलभ है और बड़े उत्साह के साथ प्रदर्शनों में सम्मिलित होता है। अनेक भारतीय भाषाओं में इस प्रकार नाट्य-प्रदर्शनों का क्षेत्र विस्तृत होने से एक बड़ा भारी लाभ यह होगा कि हिन्दी और दूसरी भारतीय भाषाओं में नाटक साहित्य के अनुवाद और रूपान्तर का कार्य अधिक सुगम हो जायेगा और शायद परिणाम भी अधिक उत्तम हो सकेंगे। हम एक दूसरों के नाटकों से परिचित होंगे और यह परिचय इस दृष्टि से और भी अधिक महत्वपूर्ण होगा कि यह पुस्तक के माध्यम से न होकर रंगशालाओं में होगा। अतः रंगमंच पर शक्तिवान् नाटकों के विनिमय से हमारा रंगमंच भी अधिक पुष्ट और समर्थ होगा।

एक और रोचक बात इस सम्बन्ध में यह है कि विकसित और साहित्यिक भाषाओं के साथ गत वर्ष गढ़वाली आदि बोलियों में भी कई-कई दिनों के नाटक समारोहों का आयोजन किया गया। दिल्ली की नयी बस्तियों में इस प्रकार के बोलियों और विभिन्न भाषाओं के नाट्य-प्रदर्शनों को भी धीरे-धीरे एक परम्परा बन रही है और अपने सीमित साधनों के साथ उत्साही कार्यकर्ता नाटक प्रस्तुत कर रहे हैं । सबसे बड़ी उत्साह वर्द्धक बात यह है कि इन नाटकों का दर्शक-समाज बड़े ही उत्साह भाव से इनमें सम्मिलित होता है। अतः यदि हमारे नाटक-संघ और दूसरी सरकारी और अर्द्ध-सरकारी संस्थाएं खुले रंगमंचों की व्यवस्था इन बस्तियों में कर दें और थोड़ी-सी आर्थिक सहायता अथवा रंगमंच सम्बन्धी टैक्नीकल सामग्री देकर स्थानीय दलों की सहायता कर सकें, तो राजधानी में रंगमंचीय कार्यकलाप का बहुत विस्तार हो सकता है और साथ-ही अधिक सरलता के साथ और कम खर्चे पर लोगों का मनोरंजन हो सकता है।

अंग्रेजी नाटक

गत वर्ष दिल्ली में रंगमंचीय जीवन की एक बहुत ही महत्वपूर्ण घटना यह है कि 'थ्येटर वर्कशाप' जैसे नाट्य-दलों का जन्म हुआ, और अनेक उच्चस्तर के अंग्रेजी नाटक, जैसे ए मंथ इन दि कंट्री, बिटनेस फार दि प्राजीक्यूशन, क्वीन एण्ड रिबेल्स और दि फैक्ट्स आफ लाइफ आदि नाटकों का प्रदर्शन हुआ । इन नाटकों के प्रदर्शन के ऊंचे स्तर को स्थानीय प्रेस और जनता दोनों ने सराहा और स्थानीय दर्शकों की रुचियों का परिष्कार करने और उनको अधिक संगठित करने में इन नाट्य-प्रदर्शनों का जितना बड़ा योगदान है उतना और किसी दूसरी बात का नहीं । इन अंग्रेजी नाटकों के प्रदर्शन के कई उपयोगी पक्ष हैं---एक तो इनमें प्रदर्शन-कला के अनेक रूपों और पक्षों जैसे रंगसज्जा, प्रकाश-योजना और निर्देशन आदि में बड़े ही उच्च स्तर स्थापित किए गए और दूसरे इनके द्वारा समसामयिक अंग्रेजी नाट्य-लेखन की शैलियों का भी परिचय मिला है।

इन नाट्य-प्रदर्शनों से हमारे निर्देशक, रंगसज्जाकार, लेखक और साथ-ही-साथ दर्शक सभी नयी शैलियों के व्यवहार और अनुशासन सीख सकेंगे और अपने प्रदर्शनों में उनका प्रयोग कर सकेंगे। इसके पहले पिछले किसी वर्ष में अंग्रेजी नाटकों का इतना अच्छा चुनाव और ऊंचा कलात्मक स्तर नहीं रहा है। इस कार्य में हमको बहुत बड़ी सहायता कई दूतावासों के कर्मचारियों से मिली है । मि० टाइटलर का कई दृष्टियों से बहुत बड़ा महत्व है क्योंकि उन्होंने अच्छे अभिनय के साथ-ही-साथ थ्येटर वर्कशाप का बड़ी ही वैज्ञानिक रीति से संगठन किया है । इस सम्बन्ध में श्री झाबवाला का नाम भी उल्लेखनीय है, क्योंकि वे रंगसज्जा और दृश्यबंधों के निर्माण के नए कलामान प्रस्तुत कर रहे हैं और हमारे प्रदर्शनों को आधुनिक भंगिमाएं दे रहे हैं । प्रकाश-योजना के क्षेत्र में श्री माइकेल का कार्य सराहनीय है।

कुछ नए नृत्य-नाटक

इसी वर्ष नृत्य नाटकों के भी दो नए महत्वपूर्ण प्रदर्शन हुए--एक तो बम्बई के लिटिल बैले ट्रूप का 'मेघदूत' और दूसरा बम्बई के ही दूसरे नाट्यदल का 'सांझ-सबेरा' । लिटिल बैले ट्रूप स्वर्गीय शांतिवर्धन के निर्देशन में पहले ही 'पंचतंत्र' प्रस्तुत कर

compiled and created by Bhartesh Mishra

चुका है, जिसे बहुत ख्याति मिली है और जिसने भारतीय नृत्य-नाटक के भावी रूप का मूलाधार निश्चित कर दिया। इस नृत्य-दल ने बहुत कुछ पंचतंत्र की नृत्य रचना के आधार पर ही 'मेघदूत' का निर्माण किया है। यद्यपि व्यापक रूप से यह नृत्य-नाटक बहुत अंशों तक पंचतंत्र से ही कला-सामग्री ग्रहण करता है, किन्तु फिर भी इसमें काफी नए तत्व हैं। सांझ-सबेरा का दृश्य-लेखन और गीतों की रचना कवि श्री नरेन्द्र शर्मा ने की है। नृत्य-नाटकों को यदि कवियों और नाटककारों का योग मिल सका, तो नृत्य-नाटकों का कलात्मक स्तर ऊंचा होगा और वे अधिक लोकप्रिय होंगे।

इन नृत्य-नाटकों के अतिरिक्त स्थानीय भारतीय कला केन्द्र ने मालती माधव और कुमार सम्भव – दो नृत्य-नाटक कथक शैली में प्रस्तुत किए। दोनों नृत्य-नाटकों में कथक शैली का पूरी नाटकीयता के साथ प्रयोग किया गया, और साथ-ही-साथ संगीत को भी गहरी नाट्य व्यंजना प्रदान की गयी। इसके अतिरिक्त स्थानीय "हिन्दुस्तानी थ्येटर" ने भी 'शकुंतला' का कथानक, नृत्य-नाटक के रूप में प्रस्तुत किया, जिसमें कथक के अतिरिक्त अन्य नृत्य-शैलियों और अनेक लोक नृत्य-रूपों से गतियां और मुद्राएं ग्रहण करके उनको एक विशिष्ट नाट्य-योजना के अन्तर्गत सम्बद्ध किया गया। नृत्य-नाटकों के ये नए प्रयोग निस्संदेह विकास की नयी दिशाओं का संकेत करते हैं।

कठपुतली नाटक

इस वर्ष की एक महत्वपूर्ण घटना यह है कि हमारे देश में पहली बार चैकोस्लोवाकिया और रूस के कठपुतली नाटकों का प्रदर्शन हुआ। चैकोस्लोवाकिया के कठपुतली नाटक की तो सैकड़ों वर्षों की परम्परा है और उसका वहां के कलात्मक और सांस्कृतिक जीवन में बहुत ऊंचा स्थान है। रूस के कठपुतली नाटक का इतिहास यद्यपि पचीस-तीस वर्षों का ही है, तथापि वहां भी बहुत बड़ी उपलब्धियां इस क्षेत्र में हुई हैं। दिल्ली में इन प्रदर्शनों को प्रेस और जनता–दोनों ने बहुत सराहा, और रंग-मंच के दर्शकों के लिए तो यह बहुत बड़ा अनुभव रहा। इन प्रदर्शनों का इस दृष्टि से और भी अधिक महत्व है कि हम भी अपने देश में पिछले चार-पांच वर्षों से अपने कठपुतली रंगमंच के पुनर्निर्माण पर काम कर रहे हैं, और इस दिशा में कुछ संतोष जनक प्रयोग भी हुए हैं। स्थानीय भारतीय कलाकेन्द्र की सूचना-मंत्रालय के गीत और नाटक विभाग ने कई महत्वपूर्ण कठपुतली नाटक प्रदर्शित किए, और इनमें बड़ी ही वैज्ञानिक रीति से पुरानी परम्परागत नाटक सामग्री का पुनर्निर्माण किया गया––पुतलियां नए ढंग से गढ़ी गयीं, उनकी सज्जा अधिक नाटकोचित और आधुनिक रीति से की गयी और साथ ही कठपुतली-रंगमंच और उनके संचालन में भी बहुत बड़ा सुधार किया गया, और कथा के व्याख्यान और गायन आदि को अधिक नाटकीय और सार्थक बनाया गया। ढोला-मारू, झांसी की रानी, और कुंवरसिंह की टेक ऐसे ही प्रयोग हैं। अभी हाल ही में एक नाट्य-संस्था 'पुतलीघर' का निर्माण हुआ है, जिसने परम्परागत कठपुतली नाटक अमरसिंह राठौर का पुनःसंपादन किया, और उसे नए रंगमंच और नयी प्रदर्शन-युक्तियों के साथ प्रस्तुत किया। ये सारे प्रयोग आशाजनक अवश्य हैं पर इस क्षेत्र में अधिक विचार करने और संगठित प्रयत्न करने की आवश्यकता है। आशा है कि कठपुतली नाटक के पुनर्निर्माण में लगे हुए हमारे कलाकारों और कार्यकर्ताओं को महत्वपूर्ण विदेशी कठपुतली नाटक देखने के बाद बहुत से नए विचार मिलेंगे और उनके कार्य की दिशाएं स्पष्ट होंगी।

हिन्दी नाट्य लेखन

नाट्य प्रदर्शनों के इस सर्वेक्षण के साथ-साथ इस बात की चर्चा भी संगत होगी कि हिन्दी में अभी तक उच्च कोटि के मौलिक अभिनेय नाटकों का अभाव है। हमारे नाट्य-दल अनुवादों, रूपान्तरों और उपन्यासों के नाटकीकरण से ही काम चला रहे हैं। कुछ नाटक संस्थाओं के उत्साही कलाकारों ने लिखे हैं, यद्यपि उनका साहित्यिक स्तर ऊंचा नहीं है, वे अभिनेयता के गुणों का आश्वासन देते हैं। हिन्दी रंगमंच के विकास और विस्तार के इस युग में इस बात की बड़ी आवश्यकता है कि हम अच्छे मौलिक नाटकों की रचना भी करें, क्योंकि नाटक साहित्य का स्तर नीचा होने से विभिन्न प्रदर्शन कलाओं के स्तर भी नीचे ही रहेंगे। इसके लिए सबसे बड़ी आवश्यकता इस बात की है कि हम नाटककार को रंगमंचीय क्रियाकलाप में पुनः पूरी प्रतिष्ठा दें, और नाटककार भी अपने वास्तविक क्षेत्र––रंगशाला को अपना कार्यक्षेत्र बनाएं।

–डा० सुरेश अवस्थी
(हिन्दी में मौलिक

धर्म्यं यशस्यमायुष्यं हितं बुद्धिविवर्द्धनम्
लोकोपदेशजननं नाट्यमेतद् भविष्यति।
(भरत : नाट्यशास्त्र 1/81)

(धर्म, कीर्ति, आयुष्य प्रदाता, हितकर और बुद्धिवर्द्धक
उपदेशों के हित जनता में, होगा समर्थ यह नाटक)

compiled and created by Bhartesh Mishra

मैक्स बिअर बोम

श्री जेम्स लेवर

कला के इतिहास में व्यंग चित्रों का विशेष स्थान है। एक लम्बे अरसे तक व्यंग चित्र बिल्कुल नहीं दिखाई पड़ते, परन्तु फिर अचानक व्यंग चित्रकारों की संख्या में बाढ़ आ जाती है। इनको जन्म देने के लिए खास तरह की राजनीतिक और सामाजिक स्थितियां जरूरी होती हैं और इसके लिए यह भी जरूरी है कि प्रतियां निकालने के सुगम साधन भी उपलब्ध हों। पुराने जमाने में हमें इसके कुछ चिन्ह मिलते हैं। मध्ययुग के कुछ पादरी, जो चर्च की पुस्तकों के हाशियों को सज्जित किया करते थे, कभी-कभी चित्र भी बना देते थे। सोलहवीं सदी के अन्त में बोलोगना में कैरेसी जैसे इतालवी कलाकारों ने अपने स्टूडियो में इस कला को शौकिया अपनाया था।

लेकिन अठारहवीं सदी के आखीर की ओर और उन्नीसवीं के पहले दो दशकों में ही इंग्लैंड में व्यंग चित्र वस्तुतः सामाजिक तथा राजनैतिक प्रभाव की दृष्टि से पूर्ण समृद्ध दिखाई दिए। कहा जाता है कि श्री जेम्स के व्यंग चित्रों को देखकर नेपोलियन गुस्से में बौखला उठा था।

श्री गिलरे अपनी कला कृतियों की रचना खूब अबाधरूप से इसलिए कर सका, क्योंकि उस समय इंग्लैंड में सेंसर सम्बन्धी कानून बड़ा ढीला था। उस समय मानहानि का दावा करने के लिए भी कोई खास प्रभावी कानून न था। आज जो व्यंग चित्रकार इतनी स्वच्छन्दता से अपनी व्यंगचित्र बनायेगा वह अच्छे से अच्छे प्रजातन्त्र देश में भी जल्दी ही अपने आपको जेल में पायेगा।

इसमें कोई शक नहीं कि उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में इंग्लैंड तक में व्यंग चित्रों की तेजी कम हो गई थी और वास्तव में ये बड़े ही नर्म हो गए। वेनिटी फेयर में निकलने वाली प्रसिद्ध चित्रमाला में 'एप' (कार्ले पेलेग्रीनी) व्यंगचित्रकार था, परन्तु उसका उत्तराधिकारी 'स्पाई' (लैस्ली वार्ड) एक विशुद्ध चित्रकार ही कहा जा सकता है, क्योंकि उसके द्वारा बनाए गए चित्रों में कोई भी विरूपता देखने में नहीं मिलती। व्यंगचित्र की सच्ची परिभाषा यही है कि वह विषय की एक ऐसी परिहासपूर्ण नकल होती है, जिसमें विषय की त्रुटियों को खूब बढ़ा चढ़ाकर दिखाया जाता है।

त्रुटियों की जगह 'विशेषताएं' कहना शायद ज्यादा अच्छा होगा, लेकिन इससे एक दिलचस्प बात उठ खड़ी होती है, क्योंकि विषय की 'विशेषताएं' देखने वाले के दृष्टिकोण पर निर्भर होती हैं। किसी व्यक्ति की वास्तविक विशेषताओं को समझ लेना एक कल्पनाशील सूक्ष्मेक्षण का काम है और उसको खास प्रसंग में बढ़ा-चढ़ा कर दर्शाना एक बड़ी ही व्यक्तिनिष्ठ और विशिष्ट प्रतिभा का काम है। यही कारण है कि वास्तव में अच्छे व्यंग चित्रकार बहुत ही कम संख्या में मिलते हैं।

1890 तक यह स्पष्ट हो गया कि इंग्लैंड के व्यंग्य चित्र इतने सुधरते जा रहे हैं कि उनका अस्तित्व ही खतम हो जाएगा। जार्ज डु मोरिये के अपने समय के समाज का निदर्शन करने वाले चित्र 'पंच' के पृष्ठों पर निकलते थे। पर उनकी रेखाओं में व्यंग की कोई खास चुटकी नहीं होती थी। उनके चित्रों में शायद ही कोई विरूपता दिखाई देती है और बिना इस विरूपता के किसी व्यंगचित्र को व्यंग-चित्र नहीं कहा जा सकता, लेकिन इस स्थिति में दो कलाकारों द्वारा आगे चलकर भारी परिवर्तन किया गया। दोनों का ही जन्म संयोग से सन् 1872 ई० के एक ही सप्ताह में हुआ था। ये दोनों कलाकार थे ओबरे वियर्डस्ले और हेनरी मैक्समिलीयन वियरबोम।

मैक्स विअरबोम अपने स्कूल के दिनों में ही अपने अध्यापकों के व्यंग-चित्र बनाया करते थे। इतना ही नहीं वह 'एप' और 'स्पार्ट' के व्यंग-चित्र देख चुके थे और उन्होंने उस समय के राजनीतिज्ञों के व्यंग चित्र बनाना भी शुरू कर दिया था। लेकिन बाद में आगे चलकर जब वह ओक्सफोर्ड में पढ़ने गए, तब उनकी कला खासतौर पर चमकी।

उनकी सबसे पहली रचनाएं सार्वजनिक रूप में 1892 में 'दि स्ट्रेण्ड मैगजीन' में प्रकाशित हुईं। इनका नाम था 'क्लब टाइप्स'। इन रचनाओं से पता चलता है कि वह कई शैलियों में प्रयोग कर रहे थे और इसमें उनकी खास शैली भी स्पष्ट हो जाती थी। अपने मित्र बिल रोथैन्स्टीन के जरिये वह वियर्डस्ले से मिले और अपने सौतेले भाई हर्बर्ट विअरबोम के जरिए वह प्रकाशक 'जोनलैन' के सम्पर्क में आए। इस सबके फलस्वरूप उनकी एक रचना 'दि यलो बुक' में ली गई, यद्यपि यह एक साहित्यिक कृति थी, व्यंगचित्र नहीं।

यह एक अनोखी बात है कि जब उनकी व्यंग चित्र-कला अभी शैशव में ही थी, उनकी साहित्यिक कृतियां शुरू से ही बड़ी प्रौढ़ थीं। 1896 में 'दि वर्क आफ मैक्स वियर बोम' प्रकाशित हुई और अगले साल 'दि हैपी हिपोक्रिट'। दो साल बाद उनकी महान् कृति 'जुलेका डोबसन' प्रकाशित हुई। इस बीच वह 'दि सैटर्डे रिव्यू' में जार्ज बरनार्ड शा के स्थान

compiled and created by Bhartesh Mishra

पर नाट्य-आलोचक नियुक्त किए गए। अपने विदा भाषण में बरनार्ड शा ने स्वयं सबसे पहले उनको "अद्वितीय मैक्स" नाम दिया।

बीच-बीच में मैक्स अपने व्यंग चित्रों की प्रदर्शनियां आयोजित करते रहे और उन चित्रों की प्रतिलिपियों की जिल्दें भी प्रकाशित करते रहे। 1896 में प्रकाशित होने वाली उनका रचना कैरी-केचर्स आफ ट्वेंटी-फाइव जैंटिल मैन, वैलफोर, विंअरबोम ट्री, शा और पेडेरेवस्की के व्यंग चित्र भी थे। इसमें विंअर्डस्ले का भी एक व्यंग-चित्र था, जिसमें न केवल उनके व्यक्तित्व, बल्कि उनकी चित्रकला पर भी चुटकी ली गई थी। उन्होंने कभी भी किसी का जीवन-सदृश चित्र नहीं आंका या शायद यह कहना ज्यादा ठीक होगा कि उनके विषय (शिकार) कभी उनके सामने चित्र खिचाने नहीं बैठे। वह बड़े निरीह रूप से लोगों का निरीक्षण करते थे और उनका जो बिम्ब उनके मन पर पड़ता था वह छन कर ही उनकी कृतियों में आंका जाता था।

वह 1910 में एक अमेरिकी अभिनेत्री से विवाह करके इटली में जम गए। इस प्रकार इंग्लैंड से दूर चले जाने से उन्हें कम से कम यह लाभ हुआ कि अपने व्यंग चित्रों के विषयों से वह कुछ दूरी पर रहे। यह दूरी प्रत्येक व्यंग-चित्रकार के लिए जरूरी ही है। इससे इंग्लैंड से उनका सम्पर्क भी छूट गया। प्रथम महायुद्ध के समय वह इंग्लैंड में ही थे। देहात में रोथैन्स्टीन के मकान पर रहते हुए उन्होंने अपनी सुप्रसिद्ध और सर्वाधिक रोचक कृति 'रोजैटी एण्ड हिज सर्किल' (1922) प्रकाशित की। यह पुस्तक अगली पीढ़ी को कुछ विभ्रम में डाल सकती है। चूंकि मैक्स डिकेडेंस-वादियों के समकालीन थे। वह पूर्व-रैफेल वादियों के भी समकालीन थे। चूंकि वह "आसकर वाइल्ड" से परिचित थे, वह रोजैटी से क्यों न परिचित होते। वास्तव में वे दोनों दो पृथक् पीढ़ियों के थे और मैक्स ने अपनी इस कृति की भूमिका में इस बात को साफ माना भी है। उन्होंने कहा है कि इनमें से किसी भी चित्र को प्रामाणिक न माना जाए। मुझे रोजैटी के दर्शन करने का सौभाग्य कभी नहीं मिला और न कोवैंट्री पाटमोर या फोर्ड मैडोक्स ब्राउन या जौन रस्किन या रोबर्ट ब्राउनिंग को ही मैंने कभी देखा है। फिर भी मैंने केवल पुराने रेखाचित्रों फोटोग्राफों और प्रत्यक्षदर्शियों द्वारा किए गए वर्णन का ही सहारा नहीं लिया है। मैंने एक और भी ऐसी चीज़ का सहारा लिया है, जो कल्पना की दृष्टि से बहुत ही विचित्र तरह की है इसके बारे में मैं फिर कभी आप को बताऊंगा।

शायद मैक्स का अभिप्राय अपनी ऐतिहासिक कल्पना शक्ति से था, क्योंकि हमें लगता है कि मैक्स अपने पूर्ववर्ती लोगों और पूर्व-रैफेल वादियों के बारे में बहुत कुछ जानते थे। वह शायद उनको उससे भी ज्यादा जानते थे, जितना कि उन समकालीन व्यक्ति। उन्होंने विलियम मौरिस और बर्नजो का साथ-साथ बैठे हुए जो चित्र खींचा है, वह तत्कालीन समा पर कोई खासी अच्छी टिप्पणी नहीं है। इस ग्रन्थ के व्यंगचित्रों सबसे ज्यादा चुटकी 'रोजैटी' के उस व्यंग चित्र में ली गई जिसमें उन्हें एक भित्ति चित्र अंकित करते हुए दिखाया गया है।

1883 में मैक्स ने अपने आप को एक बड़े सार्वजनिक विव में ग्रस्त पाया। उस साल लीसेस्टर-वीथी में उन्होंने अपने व्यं चित्रों की जो प्रदर्शनी आयोजित की थी, उनमें सम्राट् सप्त एडवर्ड के भी कुछ चित्र थे। ये काफी उग्र प्रकार के थे औ जिस प्रकार मैक्स के पुराने सम्राटों सम्बन्धी व्यंग चित्र का असौजन्य-पूर्ण रहा करते थे, उसी प्रकार की कुछ बात इ चित्रों में भी थी। और यह कोई बड़े अचम्भे की बात नहीं कि उनको लेकर बड़ा होहल्ला मचा। इन चित्रों को बाद में हट लिया गया। बाद में सम्राट् ने भी उनको क्षमा कर दिया, जो इ बात से सिद्ध होता है कि कुछ साल बाद मैक्स को 'सर' की पदवी दी गई

एक व्यंग-चित्रकार के रूप में मैक्स विंअरबोम की विशेषता क्या है? उनकी रेखाएं बड़ी सीधी-साधी हैं। उनके रंग भ हलके और धुंधले होते हैं और उनका तरीका बड़ा ही अत क्रमणकारी है लेकिन जैसा चैस्टर्टन ने कहा है—उनकी चोट बड़ गहरी होती है, हालांकि ऊपर से वह बड़े भले लगते हैं। उनक चुटकी बड़ी ही घातक होती है। फिर भी उनके शिकार मैक्स व्यंग चित्रों का विषय बनना एक सम्मान और गौरव की बा मानते हुए इसका स्वागत करते हैं। अपनी मृत्यु से पहले ह मैक्स को काफी ख्याति मिल चुकी थी। आज भी इंग्लैंड के कल और साहित्य के इतिहास में उनका विशिष्ट स्थान है। अपने रचना काल की समाप्ति पर भी वह उसी प्रकार "अद्वितीय मैक्स बने रहे, जैसा कि बरनार्ड शा ने शुरू में उनके बारे में कहा था

(मूल अंग्रेजी से मंत्रालय में अनूदित)

एक सच्चा कलाकार अपने काम से कभी नहीं थकता है।

—महात्मा गान्धी

compiled and created by Bhartesh Mishra

संगीत की संकल्प शक्ति

लक्ष्मीनारायण गर्ग

प्रत्येक कलाकार के लिए साधना एक परम-आवश्यक शर्त है। इस साधना के पीछे कलाकार की जो संकल्प शक्ति काम करती है, वही उसकी कला का प्रेरक तत्व होती है। प्रस्तुत लेखक के विचार से यह बात अन्य कलाओं पर तो सामान्यतः लागू होती ही है, पर विशेषतः संगीत का संमोहन तो संगीतज्ञ की इसी संकल्प शक्ति पर निर्भर है। यह लेख हिन्दी में मौलिक है। इस लेख के विवाद-ग्रस्त पहलुओं पर हम पाठकों के पत्रों का स्वागत करेंगे।

सम्पादक

संकल्प और एकाग्र चिन्तन

संकल्प चेतन का सृजन सुख है। प्रत्येक संकल्प में आत्मा का 'स्व' तत्व निहित रहता है, इसलिए प्रत्येक संकल्प विशुद्ध और मंगलकारी होता है अनिष्टकारी संकल्प में भी 'स्व' का आनन्द छिपा होता है। केवल मांगलिक भावना की सृष्टि कलात्मक सर्जन द्वारा होती है, इसीलिए कला और कलाकार दोनों ही परम आदर्श और वंदनीय होते हैं। काव्य की काया ऐसे संकल्प द्वारा निर्मित होती है, जिसमें शक्ति का विराट स्वरूप और आनन्द की अखण्ड सत्ता विद्यमान रहती है, सांसारिक चिंताओं के बोझ से दबे प्राणी की कला-सर्जना में आनन्द और शक्तितत्व का समावेश बहुत कम देखा जाता है, अतः कलासर्जन के लिए मानसिक शान्ति का होना परम आवश्यक है। मन की शान्त अवस्था में ही आनन्दमय शक्ति का प्रतिबिम्ब चित्त पर पड़ता है, प्रत्येक कलाकार मन की शान्त अवस्था से ही कला सर्जन की प्रेरणा प्राप्त करता है, जिसे हम एकाग्रवृत्ति अथवा चिंतन के अमूल्य क्षण के नाम से पुकारते हैं।

काव्य सृजन के समय कवि चिंतन सागर में डूब जाता है और यही दशा एक चित्रकार तथा संगीतज्ञ की भी होती है, किन्तु चित्रकार और कवि की अपेक्षा संगीतज्ञ की चिंतनवृत्ति का मूल्य कुछ अधिक है, क्योंकि कवि और चित्रकार की सर्जना के लिए साधारणतः कोई व्यक्तिनिष्ठ बंधन नहीं होता, वे अपनी कृति को घर बैठ कर ही कितने समय में पूर्ण कर सकते हैं, जबकि संगीतकार को संगीत प्रसारण के समय, तत्काल नवीन संकल्पों को स्वर के आधार से प्रस्तुत करना होता है, जो संगीतकार पूर्वनिर्मित स्वरयोजना को ज्यों का त्यों प्रस्तुत कर देते हैं, उनका संगीत के क्षेत्र में विशेष महत्व नहीं समझा जाता, अतएव तंत्री द्वारा झंकृत नाद की आधार भूमि पर तत्क्षण जो संगीतकार संगीत का स्वरूप निर्मित करने की क्षमता रखते हैं, वे भावों अर्थात् संकल्पों की दृष्टि से अन्य कलाकारों की अपेक्षा अधिक महत्व रखते हैं, ऐसे संगीतकार के साथ वे कवि और चित्रकार भी धन्यवाद के पात्र होते हैं, जो विचार उठते ही छन्द और रेखाओं का भव्य संयोजन उपस्थित करने में समर्थ होते हैं, संगीत एक प्राकृतिक पुकार होने के कारण सरल तथा स्वतः समृद्ध है। जहां कला की भावभूमि आती है वहां समृद्ध का प्रश्न नहीं रहता, अतः उस स्थल पर प्रत्येक कलाकार की स्थिति समान होती है।

संगीत और भावाभिव्यक्ति

जो व्यक्ति जन्मजात मूक, बधिर तथा नेत्रहीन होता है वह अस्फुट स्वर में केवल गा सकता है, काव्य रचना तथा चित्रकारी नहीं कर सकता इससे प्रतीत होता है कि संगीत भावों की अभिव्यक्ति के लिए सब से सरल और स्वाभाविक माध्यम है, तिर्यक्-योनि के प्राणियों में एक प्रकार से संगीत ही उनकी भावाभिव्यक्ति का माध्यम बनता है, इसे सभी जानते हैं। संसार का संचालन करने वाली नाद की यह शक्ति समष्टि रूप है, अतः सर्वाधिक सम्पन्न, समर्थ और समृद्ध है, इस लिए समस्त ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों से सुसम्पन्न संगीतकार संगीत-सृजन से संकल्प-शक्ति के प्रकारों का दिग्दर्शन सहृदय श्रोताओं को अन्य कलाकारों की अपेक्षा कहीं अधिक करा सकता है।

संस्कार और संकल्प

संकल्प अर्थात् भाव हृदय के उत्थित बीज हैं, जो अग्नि और प्राण द्वारा संयोजित होकर मूर्त होते हैं, बीज वस्तुतः नाद-बिन्दु होने के कारण संगीत द्वारा भावों की सहज व समृद्ध सृष्टि

compiled and created by Bhartesh Mishra

होती है । भाव-सृष्टि मानसिक रूप निर्मित करती है, जो सौन्दर्यानुभूति का कारण बनता है । मानसिक रूप दृढ़ होकर संस्कार बनते हैं । सुसंस्कृत संस्कार व्यक्ति के लिए आत्मदर्शन का मार्ग प्रशस्त करते हैं और कुसंस्कृत संस्कार उसे पतन की ओर ले जाते हैं। जिन संस्कारों को निर्मित करने वाले नाद-बिन्दु लयाश्रित होते हैं, वे सुसंस्कार कहलाते हैं और शेष कुसंस्कार अथवा साधारण संस्कार होते हैं । इसीलिए निश्चित लय-योजनाओं को धारण करने वाली भिन्न-भिन्न तालों का संगीत में अधिक महत्व है । राग का स्वरूप, स्वर तथा श्रुतियों की शक्ति, ताल और उससे उत्पन्न गतियां संगीत के ऐसे शस्त्र हैं जो एक साथ अत्यन्त वेग से राग सृष्टि करते हैं, संसार-प्रसिद्ध महान् संगीतकार बीथोबिन के रचे हुए अनेक वाद्य-वृन्द ऐसे हैं, जिनका रूपक सहृदय श्रोता के समक्ष चलचित्र की भांति स्पष्ट हो जाता है, यह संगीतकार की संकल्पशक्ति का प्रत्यक्ष उदाहरण है ।

नाटक के दृश्यों को सबल और सफल बनाने के लिए संगीत की संकल्पशक्ति ही कारण है, उसके अभाव में दृश्य निर्जीव सा होता है । प्रत्येक अवस्था के लिए संगीत के शास्त्र में भिन्न-भिन्न रागों और तालों का निर्देश है । बीभत्स तथा भयानक रस के लिए विलम्बित लय, हास्य तथा शृंगार रस के लिए मध्यलय और वीर, रौद्र तथा अद्भुत रस के लिए द्रुतलय का प्रयोग बताया गया है । प्रत्येक विनियोग प्रत्येक रस में नहीं किया जा सकता ।

संगीत जन्य संकल्प

संगीत में संकल्प शक्ति का प्रयोग करते समय संगीतकार की एक विशेष अवस्था होती है, जो विराट की सत्ता है । सृष्टि का संचालन करने वाली विराट शक्ति में तन्मय होकर कलाकार का अहं जाग्रत होता है जो लौकिक अहं से भिन्न होता है । इसीलिए उस अहं में विराट कल्पनाएं और अलौकिक संकल्प विद्यमान होते हैं । यह संकल्प कवि और चित्रकार को भी उपलब्ध होते हैं । श्रोताओं की वृत्ति संगीत के संकल्पों से तादात्म्य सम्बन्ध शीघ्र स्थापित करती है इसीलिए अन्य कलाओं की अपेक्षा संगीतजन्य संकल्पों का महत्व अधिक है, स्वर के माध्यम से संकल्प शक्ति लय की आकृतियां बनाते हुए आकाशतत्व में विलक्षण प्रतिक्रिया उत्पन्न करती है, जिसका प्रभाव जड़ और चेतन पर समान रूप से पड़ता है ।

वैदिक मंत्रों के स्वर को प्रधानता देने का कारण यही है कि स्वर और व्यंजन की संगठित संकल्प शक्ति तत्क्षण प्रभाव उत्पन्न करने में समर्थ हो सके । प्राचीनकाल में जड़ पदार्थों पर संगीत के प्रभाव संगीत की संकल्प शक्ति के ही परिणाम हैं । किसी गा वादक या नर्तक की कला में हम उसके वाह्य ढांचे पर विचार करें अर्थात् राग, शब्द, ताल तथा लय इत्यादि का विश्लेषण द्वारा न करते हुए उसकी भावाभिव्यक्ति से तादात्म्य स्थापित करें, तो संगीत की संकल्प शक्ति का दर्शन सरलता से सकता है । मुद्राओं का रौद्र संचालन शिव के विराट स्वरूप का दर्श कराएगा । कोमल स्वरों का करुण क्रन्दन अश्रुपात करती हुई विरहि नायिका को स्पष्ट कर देगा और ताल की द्रुत गतियां सर्पिणी भांति शरीर में प्रविष्ट हो कर रोमांच की सृष्टि कर देंगी । क हम उछल पड़ेंगे, कभी रो पड़ेंगे । कभी आकाश में उठकर विचर करने लग जाएंगे, कभी बहुत ऊंचे से पृथ्वी पर गिर पड़ेंगे, कभी का लगेंगे और कभी हमारा श्वास निरुद्ध हो जाएगा ।

संगीत की संकल्प शक्ति से प्रभावित होकर उस अतीनि आनन्द को प्राप्त करने के उद्देश्य से ही संगीत सम्बन्धी कार्यक्र में जनता की रुचि अन्य कलाओं की अपेक्षा अधिक पाई जाती है समस्त स्नायुओं को झकझोर कर उन्हें व्यवस्थित करके स्व बनाना संगीत की संकल्प शक्ति पर ही निर्भर है, इसीलिए आ वैज्ञानिक क्षेत्रों में ध्वनि के प्रभाव को स्वीकार कर विभिन्न रोगों औ जड़ पदार्थों पर अद्भुत प्रयोग किए जा रहे हैं । निश्चित कंपन वा स्वर एक निश्चित संकल्प का जनक होने के कारण संगीत संकल्प शीघ्र ही मानव के समक्ष प्रत्यक्ष रूप में आ रहे हैं ।

संकल्प और सम्मोहन

सम्मोहन शक्ति मनुष्य की संकल्प शक्ति का ही दूसरा नाम जिसके द्वारा प्राणी को अचेत कर उसके माध्यम द्वारा मृतात्मा से सम्पर्क स्थापित किया जा सकता है, दृष्टि में अन्तर डालकर विभि दृश्यों का अवलोकन कराया जा सकता है और मानसिक रोगों को दू किया जा सकता है, संगीत में स्वर, शब्द और लय के निश्चित परिमा से श्रोताओं पर सम्मोहन शक्ति का ही प्रयोग किया जाता है नृत्य द्वारा कलाकार के हाव-भाव तथा विभिन्न हस्तमुद्राओं औ तालमय पदाघातों द्वारा भी दर्शकों को सम्मोहित किया जाता है, जिस परिणाम स्वरूप कलाकार की इच्छित संकल्प सृष्टि का अवलोकन कर में वे समर्थ होते हैं । इस प्रकार संगीत के वाद्य और नृत्य का सम्मि लित प्रयोग मानव की संकल्प शक्ति को प्रत्यक्ष करने का अद्वितीय साधन है । संगीत कला संकल्प की दृष्टि से धनी और अत्यन्त समृद्ध है । विश्व में केवल भारत ही ऐसा देश है जहां के संगीत में संकल्प शक्ति के स्वच्छन्द प्रयोग को विशेष महत्व दिया जाता है ।

गीतमेव वशीकारकार्मणं वशिनामपि ।
त्यक्त्वान्यकार्यसम्भारः मुनयो यदुपासते ।।

(कालसेन प्रणीत संगीत राज)

(संयमियों को भी वश में निज कर सकता संगीत,
जिसकी करें साधना मुनि भी तज सब काम पुनीत ।)

compiled and created by Bhartesh Mishra

आज के भारतीय फिल्म

मारी सीटन

अनु० महेन्द्र चतुर्वेदी

कोई चार वर्ष हुए मैं अपनी एक सहेली के साथ रहने के लिए बम्बई आई थी। लन्दन में 1930 के बाद कई वर्षों तक हम लोग अक्सर साथ-साथ सिनेमा देखने जाया करते थे। यूरोप में उस समय फिल्में बनाने के क्षेत्र में बड़े प्रयोग हो रहे थे। बम्बई पहुंचने पर सब से पहली बात जो मेरी सहेली ने कही वह यह थी कि वह अभी कलकत्ते से लौटी है और वहां उसने एक बहुत बढ़िया बंगला फिल्म देखी थी—'पथेर पांचाली'। उसने कहा : 'तुम्हें यह फिल्म जरूर देखनी चाहिए'। करीब एक महीने बाद एक दिन इतवार को सवेरे वह मुझे 'पथेर पांचाली' दिखाने ले गयी। सचमुच वह एक महान् चित्र है।

इस बात को चार वर्ष हो गए—तब से कई देशों में इसका एक महान् फिल्म के रूप में स्वागत हो चुका है। अमेरिका की एक रंगशाला में एक लम्बे अरसे से बराबर यह फिल्म दिखाई जा रही है।

अब अगर मैं यह कहूं कि भारत-सरकार को यह विश्वास कराने में कि पश्चिम बंगाल सरकार ने एक ऐसी फिल्म तैयार की है जिसके कारण दुनियां की नजरों में भारतीय फिल्मों का गौरव बहुत बढ़ जाएगा, अनगिनत लोगों को काफी प्रयास करना पड़ा, तो मैं समझती हूं कोई बुरा न मानेगा। सच बात यह है कि भारतीय चलचित्रों का इतिहास कुछ ऐसा रहा है कि शासन-सत्ता के सम्बन्धित और शासन-सत्ता से बाहर के अनेक जिम्मेदार लोग निराश होकर या ऊब कर भारतीय फिल्मों से विरक्त हो चले थे। उनका दृढ़ विश्वास हो गया था कि भारत ऐसी फिल्में बनाने में असमर्थ है, जो अन्य फिल्म-निर्माता राष्ट्रों की उत्कृष्ट फिल्मों के समकक्ष रखी जा सकें।

परन्तु जब अन्ततः 'पथेर पांचाली' को 1956 के कान फिल्म-समारोह में भेजा गया, तो अपने महान् मानवीय तत्वों के कारण उसे विशेष पुरस्कार मिला। यह फिल्म एक प्रस्तावित फिल्मत्रयी की पहली भेंट थी। इस क्रम की दूसरी फिल्म "अपराजित"—1959 के वेनिस-फिल्म समारोह में इस फिल्म को सर्वश्रेष्ठ पुरस्कार मिला। पहली फिल्म मन मोह लेने वाले अपने दो बालक-पात्रों के कारण आम दर्शक के मन को छू लेती है, इस दूसरी फिल्म का आकर्षण उतना प्रबल और स्पष्ट नहीं। लेकिन प्रबुद्ध दर्शक तुरन्त समझ सकता है कि इस दूसरी फिल्म का निर्देशन कहीं अधिक प्रौढ़ है और उसने यह निश्चय ही सिद्ध कर दिया कि कुछ शंकालु लोगों की यह भविष्यवाणी गलत थी कि निर्देशक सत्यजित राय 'केवल एक फिल्म के निर्देशक' होकर रह जाएंगे।

अगले वर्ष यानी 1958 में हिन्दी फिल्म 'जागते रहो' को चैकोस्लावाकिया फिल्म-समारोह में प्रमुख पुरस्कार प्राप्त हुआ। इसमें राजकपूर और नरगिस ने अभिनय किया है। इसी वर्ष वृत्तचित्र-प्रतियोगिता में फिल्म्स डिवीजन के लिए विमल राय द्वारा तैयार की गई फिल्म 'गौतम, दि बुद्ध' पुरस्कृत हुई। इस चित्र का निर्माण आद्यन्त कलात्मक प्रतिमाओं से किया गया है जिनमें बीच-बीच में अजन्ता के भित्तिचित्रों का भी समावेश कर लिया गया है। हाल ही में, पश्चिम बर्लिन-फिल्म-समारोह की वृत्त-चित्र-प्रतियोगिता में फिल्म डिवीजन द्वारा निर्मित एक और फिल्म को पुरस्कार मिला था। यह फिल्म राधा-कृष्ण की प्रेम-कथा के चित्रों के आधार पर बनायी गई थी।

इस प्रकार कई देशों में अन्तर्राष्ट्रीय निर्णायकों ने पिछले चार वर्षों में यह स्वीकार किया है कि भारत में उत्कृष्ट चित्रों का निर्माण होता है। हालांकि आम फिल्में उन परम्पराओं से ग्रस्त रहती हैं, जिनका आग्रह, व्यापारिक दृष्टि से सफल फिल्म के अनिवार्य अवयवों के रूप में निर्माता को होता है। विदेश में 'पथेर पांचाली' और 'अपराजित' की सफलता का तुरन्त ही एक व्यवसायिक परिणाम हुआ है कि पश्चिम में विदेशी वितरक उत्कृष्ट कोटि की किसी भी भारतीय फिल्म को लेने के लिए तत्पर रहते हैं।

एक बात यहां कह दूं कि पश्चिमी यूरोप के देशों तथा अमेरिका में जिस तरह की फिल्में पसन्द की जा सकती हैं, वे पूर्वी यूरोप के देशों में पसन्द की जाएं- यह आवश्यक नहीं। भारतीय फिल्मों को लेकर दोनों की रुचि में बड़ा भेद है। 'पथेर पांचाली' सोवियत रूस में अब तक कहीं भी नहीं चलाई गई, परन्तु सोवियत रूस और चीन में आज तक जो विदेशी फिल्में चलाई गई हैं उनमें सबसे सफल राजकपूर की लोकप्रिय फिल्म 'आवारा' रही है। पश्चिम में उसका आम वितरण नहीं हुआ।

रुचि में यह जो भेद है इसका एक बुद्धिसंगत कारण है। सोवियत संघ में बड़े लम्बे अर्से से सामाजिक समस्या-चित्र बनाए जाते रहे हैं, सोवियत रूस के दर्शकों को मनोरंजक फिल्में अपेक्षाकृत बहुत कम देखने को मिलती हैं। 'आवारा' ऐसी मनोरंजक फिल्म है, जो उनके लिए सर्वथा नई चीज थी इसलिए वे सभी इस फिल्म को देखने के लिए टूट पड़े। इसके अतिरिक्त, सोवियत संघ में अच्छी फिल्मों के लिए वरिष्ठ दर्शकवर्ग का निर्माण कभी नहीं किया

compiled and created by Bhartesh Mishra

गया । परन्तु पश्चिम में एशिया या यूरोप के किसी भी देश द्वारा निर्मित श्रेष्ठ फिल्मों के दर्शकों की संख्या में निरन्तर अभिवृद्धि हुई है । अमेरिका के विषय में भी यही बात सत्य है । वहां ऐसी विशेष रंगशालाएं हैं, जिनमें प्रबुद्ध दर्शकों की रुचि के फिल्म ही दिखाए जाते हैं । बाकी लोग दूसरे सिनेमाघरों में जाते हैं, जिनकी संख्या कहीं अधिक है ।

विदेशों में उत्कृष्ट भारतीय फिल्म का भविष्य स्पष्ट ही बड़ा उज्ज्वल है । इस प्रकार, भारत के उत्कृष्ट फिल्मों को लेकर विदेशी दर्शकों की प्रतिक्रिया अनुकल है । परन्तु दुर्भाग्यवश देश के भीतर ऐसे फिल्मों के प्रति जो प्रतिक्रिया है वह प्रतिकूल ही है । इंगलैंड के प्रमुख समाचारपत्रों ने 1959 के श्रेष्ठ चित्रों की जो सूचियां तैयार की हैं, उनमें 'पथेर पांचाली' का स्थान कहीं-कहीं पहला और शेष सूचियों में प्रथम दस श्रेष्ठ फिल्मों में था। परन्तु भारत में पश्चिम बंगाल राज्य के बाहर इस फिल्म का आम प्रदर्शन नहीं किया गया । बात अविश्वसनीय-सी लगती है, पर सत्य है । 'अपराजित' की स्थिति भी यही रही है । विदेशों में इन्हें 'अमर फिल्मों' की श्रणी में रखा गया है—इससे इतना निश्चित है कि ये फिल्में बहुत समय तक जीवित रहेंगी । लेकिन बम्बई और दिल्ली में इन्हें केवल रविवार को सवेरे के खास शो में दिखाया गया है । परिणाम यह हुआ कि अनेक लोगों को—जो इन फिल्मों के बारे में बहुत-कुछ पढ़-सुन चुके हैं—इन्हें देख पाने का अवसर ही नहीं मिला । इस असाधारण स्थिति का कारण यह है कि अभी भारत में ऐसे विशेष सिनेमाघर नहीं, जो उत्कृष्ट फिल्मों में रुचि रखने वाले लोगों के ही मतलब की फिल्में चलाएं ।

भारत में फिल्म-वितरक और फिल्म-प्रदर्शक किसी तरह की जोखिम उठाने को बिलकुल तैयार नहीं—इससे स्थिति और भी जटिल हो गई है । उनका यह दृढ़ विश्वास है कि लोकप्रिय फिल्म की परिपाटीग्रस्त प्रणाली के चौखटे में न समा सकने वाली प्रादेशिक भाषाओं की फिल्मों के आम प्रदर्शन का साहस उन्हें कभी नहीं करना चाहिए । परिपाटी यह है कि हमारी फिल्में दूसरे देशों की फिल्मों से कई रीलें बड़ी होनी चाहिए, उनमें कई गाने और नृत्य होने ही चाहिए—भले ही वे कथानक के अभिन्न अंग न हों । उनमें विभिन्न तत्वों की खिचड़ी होनी चाहिए, ताकि हर तरह की रुचि के दर्शक को वे पसन्द आएं ।

इन नियमों के परिपालन का फल क्या होता है, इसे स्पष्ट करने के लिए 'सुजाता' का उदाहरण लिया जा सकता है। इसके निर्देशक हैं बिमल राय। देश भर में जनता ने इसका स्वागत 1959 की शायद सर्वश्रेष्ठ फिल्म के रूप में किया है । सुजाता एक अछूत लड़की की कहानी है । यह एकदम स्पष्ट है कि उसके पीछे एक गम्भीर फिल्म बनाने की प्रेरणा कार्य करती है, उसमें एक अत्यन्त गम्भीर सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक समस्या उठाई गई है; 'सुजाता' ऐसी फिल्म है जो लोगों को झकझोर कर 'अस्पृश्यता' के विषय में गहराई से सोचने-विचारने पर मजबूर करे । 'सुजाता' ऐसी फिल्म है जिसमें युवती अभिनेत्री नूतन ने बड़ी अन्तर्दृष्टि और संवेदनशीलता का परिचय दिया है और जिसके अभिनय को पुरस्कार योग्य कहा जा सकता है, कहीं-कहीं निर्देशक की प्रति ने भी उसमें चमक पैदा कर दी है । परन्तु प्रबुद्ध दर्शक को 'सुजा में बार-बार झटके लगते हैं—उसमें बीच-बीच में मानो पैब से लगे हुए हैं । कहीं बिना किसी उपयुक्त अवसर के गीतों समावेश है जो कृत्रिम लगते हैं, कहीं परिपाटी-विहित हंसी-मज़ और 'चमक-दमक' के दृश्य हैं, और ये सब इसलिए शामि किए गए हैं कि वितरक को फिल्म के सामान्य प्रदर्शन में आसा रहे । निर्माण-संस्था भी इन दोनों को उतनी ही अच्छी तरह जानत समझती है, जितना कठोर-से-कठोर आलोचक । उनके फिल्म में शामि किए जाने का एकमात्र कारण यह है कि वह परिपाटी की मां है । पश्चिम में इस फिल्म के वितरण का विचार किया जा तो इसमें बहुत काट-छांट करनी पड़ेगी, क्योंकि उसके बिना इ दिलचस्प फिल्म के सफल होने की आशा नहीं की जा सकती ।

'सुजाता' की सफलता इस बात का संकेत है कि भारतीय दर्श गम्भीर फिल्मों के लिए तैयार है । छोटे-छोटे नगरों से बहु संख्या में ऐसे पत्र निर्माताओं को मिले, जिनमें 'सुजाता' क प्रशंसा की गई है इससे पता चलता है कि जनता के सोचने समझने की दिशा क्या है । एक भी ऐसा पत्र नहीं आया जिस फिल्म की निन्दा की गई हो, हालांकि इसमें एक ब्राह्मण यु अछूत कन्या से विवाह करता दिखाया गया है । मैंने बम्बई एक बहुत बड़े सिनेमाघर में जब यह देखा तो मुझे साफ-साफ ल लगा कि जातीयता के पूर्वाग्रहों से ग्रस्त पात्र के प्रति सभी दर्शक के मन में एक विक्षोभ था। फिल्म देखने के बाद लोगों ने अस्पृश्यत के विषय में अपने विचारों और भावनाओं की भी विवेचना की ।

इधर जब व्यापारिक दृष्टि से 'सुजाता' का प्रदर्शन सफ हुआ, तभी दूसरी ओर सत्यजित राय की फिल्म-त्रयी की तीसर कड़ी 'अपुर-संसार' पूरी हुई । इस फिल्म को वेनिस फिल्म समारो में शामिल तो किया गया, परन्तु इसे कोई पुरस्कार नहीं मिला परन्तु इसका मतलब यह किसी तरह नहीं समझना चाहिए कि इ क्रम की यह अन्तिम फिल्म प्रथम दोनों से किसी तरह कम महत्वपू है । मैं समझती हूं कि बात बिल्कुल इसके विपरीत है । मेरे विच में 'अपूर संसार' भारत की दृष्टि से प्रथम दोनों फिल्मों से—जिन विदेशों में बड़ी प्रशंसा हुई है—कहीं अधिक महत्वपूर्ण है ।

भारत की दृष्टि से मैंने इसलिए कहा कि इस क्रम की यह तीस फिल्म प्रथम दोनों की अपेक्षा विशिष्ट भारतीय स्थितियों क कहीं गहरे पैठकर देखती है । इस फिल्म में रूढ़िवादी हि परिवार में पले हुए लोगों की सच्ची मनोवैज्ञानिक प्रति क्रियाओं को पहली बार रजतपट पर प्रस्तुत किया गया है—सर्व सृजनात्मक रूप में । फिल्म में कुछ घटनाएं ऐसी हैं जो भार में और यहां के रूढ़िवादी हिन्दू समाज में ही घटित हो सक हैं । उदाहरण के लिए अपू का मित्र अकस्मात् उससे कहता है कि व उसके मित्र की बहन से विवाह कर ले, क्योंकि अचानक ज्ञा होता है कि उसका दूल्हा पागल है। अपू उससे विवाह कर लेता क्योंकि यदि उस शुभ मुहूर्त्त में उसका विवाह न होता, तो शाय फिर कभी न होता । मैं इस देश में रही हूं, मैं जानती हूं य

compiled and created by Bhartesh Mishra

लार्ड मेकाले

(दे० पृष्ठ 24–27)

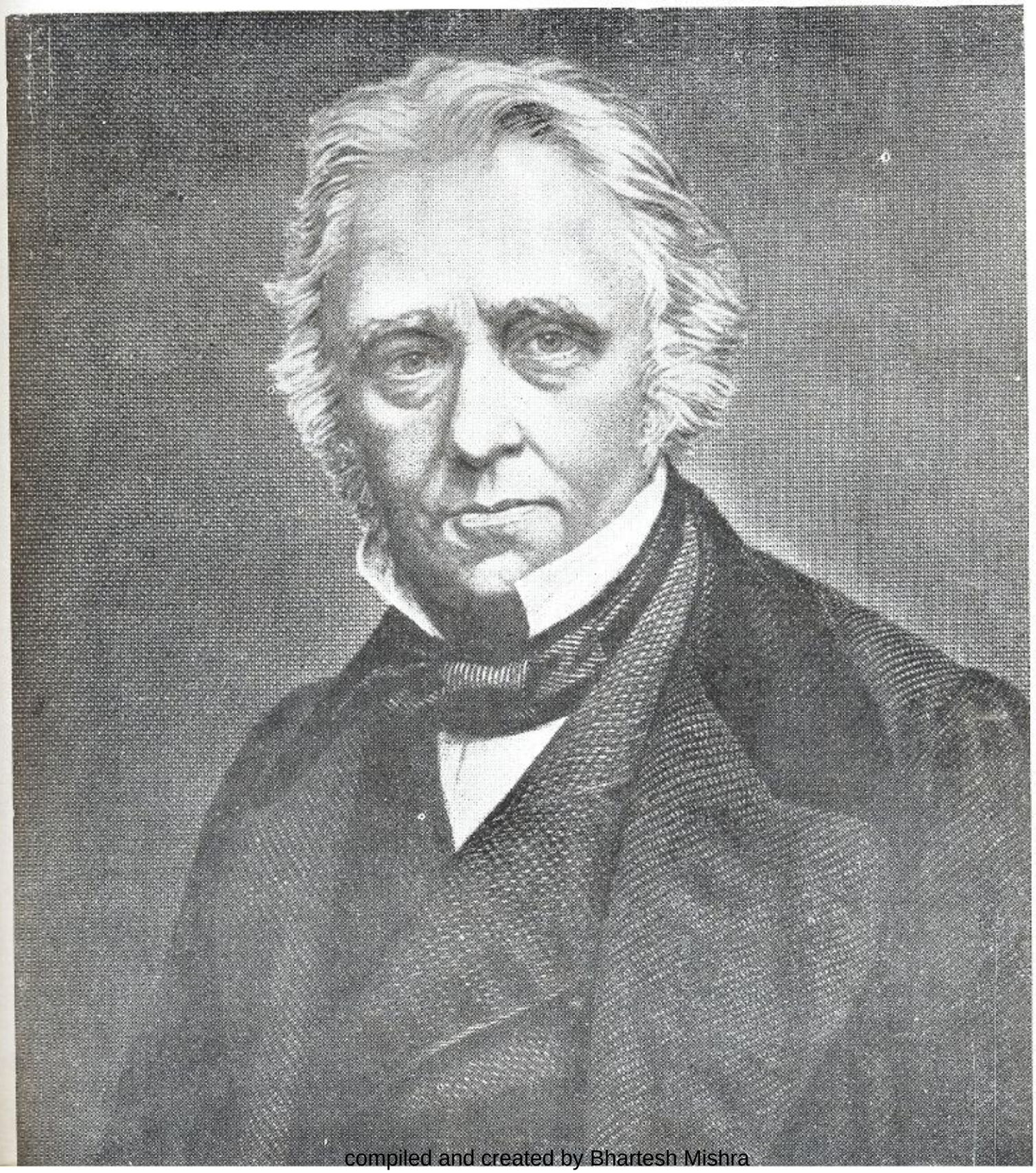

compiled and created by Bhartesh Mishra

ओरफ्यूज और यूरीडिस
(जी० एफ० वाट्स)
(सालारजंग संग्रहालय, हैदराबाद)

compiled and created by Bhartesh Mishra

...हलाद (ग्यारहवीं सदी)
...संग्रालय, लखनऊ)

चामरग्राहिणी
तीसरी सदी
(पटना संग्रहालय)

compiled and created by Bhartesh Mishra

प्रो० अ० स० अल्तेकर

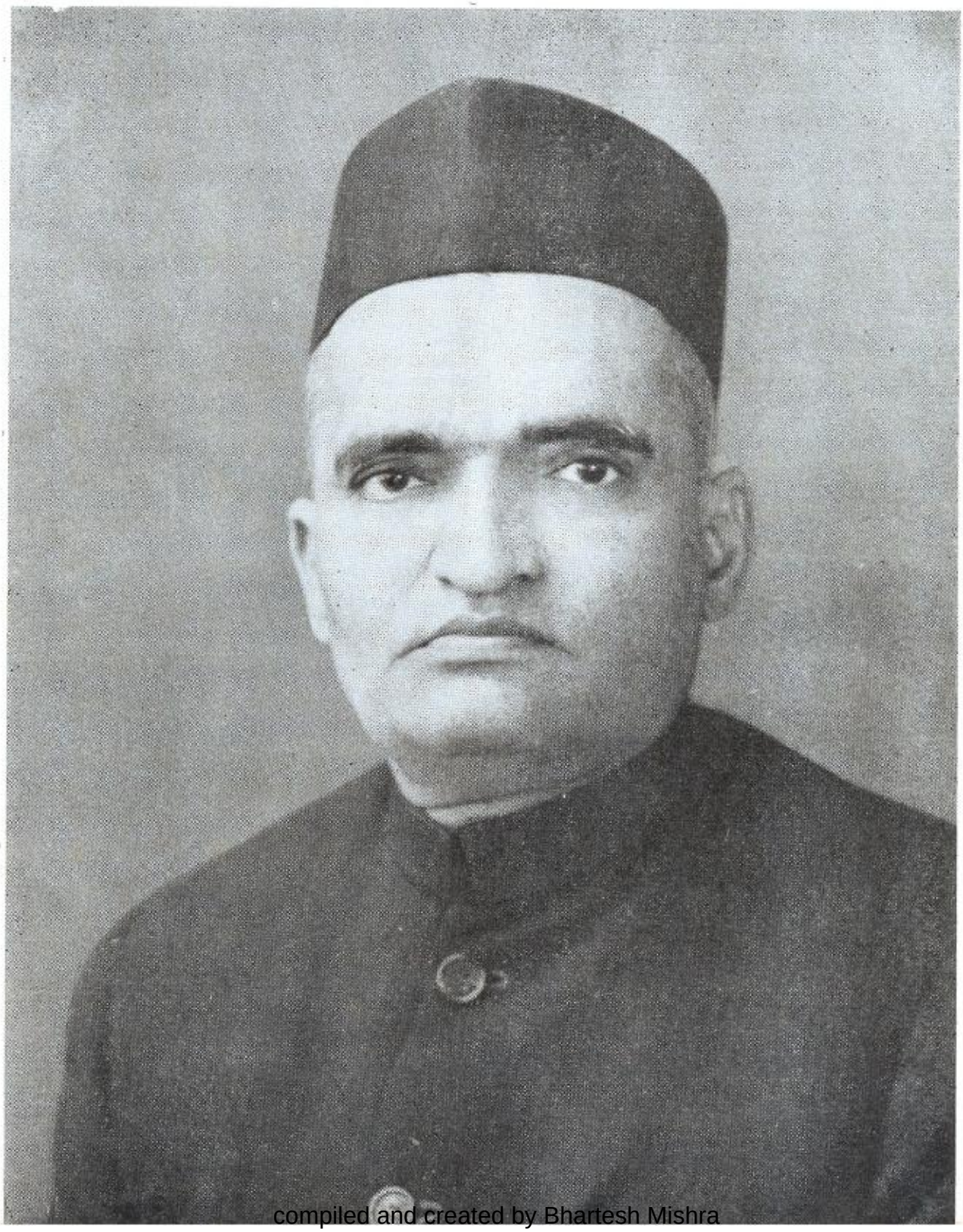

compiled and created by Bhartesh Mishra

ऐसी स्थिति पैदा हो सकती है, पर वेनिस में जो निर्णायक बैठे होंगे उन्हें तो लगा होगा कि इस स्थिति को बहुत दूर तक खींचा गया है, क्योंकि हिन्दू धर्म के प्रभाव से भारत में जो अनूठी आन्तरिक स्थितियां पैदा हो सकती हैं, उनसे वे अनभिज्ञ हैं।

'अपूर संसार' भारतीय रजतपट की एक ऐसी अपूर्व कृति है जिसे केवल वे ही लोग सराह सकते हैं, जिन्हें विशिष्ट हिन्दू संस्कृति का ज्ञान हो। इसमें गहराई है—भारत के लिए यह एक निधि है। यह बड़ी महान् और महत्वपूर्ण फिल्म है—इसमें आज का युग परिलक्षित होता है। आज अनेक लोगों के लिए संक्रांति का काल है। वे नहीं जानते उनकी स्थिति क्या है —वे रूढ़ियों के अनुगामी हैं या रूढ़ियों के बन्धनों को तोड़ना चाहते हैं ?

'अपूर संसार' को अभी तक बहुत लोगों ने नहीं देखा, जिन्होंने देखा है वे उससे प्रभावित हुए हैं। इस फिल्म ने एक बड़ा जटिल प्रश्न उपस्थित कर दिया है—ऐसी असाधारण फिल्मों के वितरण की क्या व्यवस्था हो कि जो लोग उन्हें देखना चाहें वे देख सकें।

आज अच्छी-अच्छी भारतीय और अन्तर्राष्ट्रीय फिल्में तैयार करने की विभिन्न योजनाओं पर अमल शुरू किया जा रहा है—सिनेमाओं में उनके व्यवसायिक प्रदर्शन से इतर साधनों को काम में लाया जा रहा है। फिल्म-समाज बनाने के विचार को बराबर अधिकाधिक समर्थन मिल रहा है। अभी बम्बई, दिल्ली, पटना, कलकत्ता और मद्रास—इन सभी शहरों में एक-एक ऐसी संस्था कार्य कर रही है। दिल्ली में एक और फिल्म-समाज की स्थापना का विचार किया जा रहा है। हम आशा करते हैं कि जल्दी ही समय आएगा जब देशभर में इस तरह के फिल्म-समाजों का एक जाल सा बिछ जाएगा, ताकि सत्यजित राय की फिल्म-त्रयी जैसी फिल्में जो लोग देखना चाहें वे देख सकें। पश्चिमी यूरोप में अच्छी फिल्मों के लिए अधिकाधिक दर्शक तैयार करने का साधन था फिल्म समाज और इस फिल्म-समाज से ही विशिष्ट सिनेमा के विचार की उद्भावना हुई। पिछले कुछ सप्ताहों में फिल्म-समाज के एक रूपान्तर का सुझाव दिया गया है फिल्म-क्लब। यह फिल्म-क्लब विश्व-विद्यालयों का एक अंग हो — यह कहा गया है। प्रत्येक विश्वविद्यालय को, जो फिल्म-क्लब की स्थापना के लिए तैयार हो, कम-से-कम शुरू में विश्वविद्यालय-अनुदान-आयोग की ओर से इन क्लबों के लिए अनुदान दिया जाए। भारत में अपेक्षाकृत छोटे नगरों में भी बड़े-बड़े विश्वविद्यालय हैं और वहां प्रायः ऐसे कोई मनोरंजन-साधन नहीं होते, जो स्फूर्ति दे सकें। ऐसी जगहों में फिल्म-क्लब बहुत सफल होंगे, यह आशा की जा सकती है। व्यवहार में ये फिल्म-क्लबें विशिष्ट सिनेमाओं का स्थान ले सकती हैं।

जब तक इस बात को स्वीकार किया जाता है कि भारत में बनी हुई पांच प्रतिशत फिल्मों में कलात्मक सौष्ठव होता है, तब तक इस बात की महत्ता अपेक्षाकृत बहुत कम है कि अभी लगभग 95 प्रतिशत फिल्में ऐसी बनती हैं जिनका महत्व विशेष नहीं होता। भारत की संस्कृति अत्यन्त पुरातन है और उसने प्राचीन कलात्मक परम्पराओं को बहुत हद तक जीवित रखा है, विशेषतः लोक-कलाओं के क्षेत्र में। किन्तु किसी संस्कृति में गतिशीलता तभी हो सकती है जब उसकी अभिव्यक्ति के तरीके समसामयिक संसार में कार्यरत मानव को आकृष्ट कर सकें। हमारा युग फिल्म के आकर्षण का युग है—इसमें किसी को सन्देह नहीं हो सकता। बहुमुख कलाकार ज्यां काक्तों ने ठीक ही कहा है: 'फिल्म की शक्ति उसकी वास्तविकता' में होती है—मेरा मतलब है फिल्म में हमें चीजें बताई न जायें, दिखाई जायें। भारत ने जो कुछ उत्कृष्ट फिल्में बनाई हैं, उनका सच्चा महत्व इस बात में नहीं कि उनमें छाया-लेखन बड़ा सुन्दर हुआ है या उनके कुछ दृश्य अत्यन्त आकर्षक हैं, बल्कि इस बात में है कि अभिव्यक्ति के एक आधुनिक माध्यम के द्वारा वे भारतीय संस्कृति की वर्तमान 'वास्तविकता' को व्यंजित करते हैं। इन फिल्मों की जड़ें मानों भारत की भूमि में ही फैली हुई हैं; वे दूसरे देशों में बनी फिल्मों का अनुसरण नहीं करतीं। अतः विदेशों में उनकी चाहे जितनी भी सराहना क्यों न हो, उनकी सबसे बड़ी सार्थकता तो भारतीय दर्शकों के लिए ही है और इस बात का भरसक प्रयत्न होना चाहिए कि भारत में अधिक से अधिक लोग इन्हें देखें, क्योंकि उनमें प्राचीन संस्कृति का युगीन प्रतिफलन हुआ है।

compiled and created by Bhartesh Mishra

मैकाले पर पुनर्विचार

विश्वनाथ दत्त
(अनु० रा० द्वि०)

'मैकालेवाद', ने आधुनिक भारतीय संस्कृति को जो कुछ दिया है, उसके अनक पहलुओं को लकर बड़ी-बड़ी बहसें उठाई जा सकती हैं, और प्रस्तुत लेख की अनेक मान्यताओं के बारे में हमारे बहुत से पाठक सहमत नहीं हो सकते। यह मानते हुए भी हम यह लेख इसी दृष्टि से नीच दे रहे हैं कि आधुनिक भारतीय संस्कृति पर मैकाले के प्रभाव को एक विशेष दृष्टिकोण से आंका जा सके। मैकाले शासक दल के उग्रवादी वर्ग के प्रतिनिधि थ। उग्र विचारों और अतिरंजित शैली के कारण लोग उन्हें ज्यादा पसन्द नहीं करते होंगे। उनकी प्रबल पूर्वधारणाओं ने लोगों की भावनाओं पर चोट पहुंचाई होगी। पर इतिहास ने उनके साथ न्याय नहीं किया है। इस लेख का यह दृष्टिकोण लेखक का अपना दृष्टिकोण है और 'संस्कृति' की नीति विवादयोग्य प्रश्नों को उठान की है, उनका समर्थनन या विरोध करने नहीं। इस लेख पर पाठकों के पत्रों का हम सहर्ष स्वागत करेंग।

—सम्पादक

मैकाले के भतीजे ट्रैवेल्यन से एक बार सीले ने कहा था कि कारलायल और मैकाले दोनों कपटी आदमी है। लेकिन एक्टन ने उससे कहा था कि वह उनकी बात पर भरोसा न करे और उसके महान् चाचा एक महान् इतिहासज्ञ हैं। इस लेख का मुख्य उद्देश्य मैकाले का एक इतिहासज्ञ, वक्ता आलोचक या गद्य लेखक के रूप में नहीं बल्कि एक विचारक के रूप में वर्णन करना है। मैकाले विचारों के भंडार थे और वह अपने दृढ़ विचारों के बारे में पूर्ण अटल रहते थे। इसी से प्रायः उन पर यह आरोप लगाया जाता है कि उनमें दूसरों की बात ग्रहण करने की वह क्षमता या विचार बदल देने का वह गुण न था, जो एक इतिहास-कार के लिए एक नितान्त आवश्यक बात है। भारत के इतिहास में माउंट स्टुआर्ट एलफिन्स्टन के साथ ही मनरो, मैलकाम और मैटकाफ की भी याद आ जाती है। वारेन हेस्टिंग्ज़ के साथ ही क्लाइव की बात भी सामने आ जाती है। लेकिन मैकाले किसी दूसरे की याद को नहीं दिलाते, यद्यपि उनके भारत सम्बन्धी विचार बैंटिक, चार्ल्स ट्रैवेल्यन और वैसे ही दूसरे लोगों के विचारों से बहुत कुछ मिलते-जुलते थे। मैकाले की ओर हमारा ध्यान इसलिए खिचता है कि उनके व्यक्तित्व को लेकर कई सवाल उठ खड़े होते हैं और उनकी कई बातें आज भी हमारे बीच झगड़े खड़े कर सकती हैं। उनके कुछ ऐतिहासिक विश्लेषण हमारे लिए आज बहुत ही संगत है।

ईसाई धर्म का प्रभाव

उन्होंने बचपन में ही ईसाई धर्म के भारत में प्रचार में रुचि दिखाई थी। ब्रिटिश राष्ट्र भारत में ईसाई धर्म के प्रचार के लिए जो दिलचस्पी ले रहा था, उससे उन्हें बड़ी खुशी होती थी। वह इस बात के प्रति सजग हों या नहीं, ईसाई धर्म के आन्दोलन ने उनके विचारों पर बड़ा गहरा प्रभाव डाला। अठारहवीं सदी के आखीर और उन्नीसवीं के शुरू में यह आन्दोलन बड़े जोर पर था और मैकाले के पिता भी एक धार्मिक पत्र के सम्पादक थे। ये लोग बड़े चाव से धार्मिक सभाएं आदि आयोजित करते थे और दास-प्रथा, बच्चों पर अत्याचार आदि सामाजिक कुप्रथाओं के विरुद्ध हस्ताक्षर आन्दोलन चलाते या याचिकायें भेजते थे। मैकाले का पालन-पोषण विलबर-फोर्स, हैनरी थौर्नटन और चार्ल्स ग्रांट जैसे लोगों के बीच हुआ था, जो सारी दुनियां की भलाई को अपना कार्य-क्षेत्र समझते थे। वे भारत में शिक्षा का प्रचार चाहते थे। शिक्षा धर्म परिवर्तन द्वारा, धर्म परिवर्तन बाइबिल के उपदेशों द्वारा और ये उपदेश धन द्वारा—यह उनका ध्येय था और यही उनका आदर्श था। मुझे लगता है कि मैकाले को पुराने साहित्य और उपयोगिता-वादी विचार धारा ने विशुद्ध बुद्धिवादी प्रशिक्षण दिया था, लेकिन ईसाई धर्म के विचारों और दया की भावना ने उन्हें बात कहने के ढंग में अलंकारपूर्णता, भावावेशों में उग्रता आदि चीजें प्रदान की थीं। फिर भी ऐसा कोई लिखित प्रमाण नहीं है कि वह धर्म-परिवर्तन किए जाने के समर्थक थे और मूर्ति पूजा के विरुद्ध उन्होंने जो कुछ कहा है वह विशुद्ध उपयोगितावादी दृष्टि से था। मेरा विचार है कि उनके पुराने ग्रंथों के अध्ययन और उप-योगितावादी विचारों ने उनके धर्मपरिवर्तन संबंधी जोशीले विचारों को दबा दिया।

घोर परिवर्तन की विचारधारा

केम्ब्रिज में पढ़ते समय औस्टिन के प्रभाव से मैकाले घोर-परि-वर्तनवाद (रैडिकलिज्म) के समर्थक हो गए। साधारणतः रेडिकल लोग तार्किक और अधीर विचार-धारा वाले होते थे। परिवर्तन के लिए उनमें बड़ा जोश होता था और उनमें परम्पराओं और सुस्थापित संस्थाओं को उखाड़ फेंकने की तीव्र लालसा रहती थी। यद्यपि मैकाले ने अपने एक लेख में जेम्स मिल और उनके समर्थकों की आलोचना की थी, तथापि लगता है कि समाज और उसकी समस्याओं के बारे में उनके विचारों पर रेडिकलों की भावना का भारी प्रभाव पड़ा।

compiled and created by Bhartesh Mishra

ईस्ट इंडिया बिल पर 1833 में अपने एक भाषण उन्होंने गिब्बन के रोम के इतिहास के बाद मिल के भारत के इतिहास को सर्वश्रेष्ठ ऐतिहासिक कृति बताया था। मिल का यह इतिहास 1817 में प्रकाशित हुआ था। इस इतिहास का मूल विचार था कि भारत की सभ्यता का मापदण्ड पश्चिमी सभ्यता से बहुत निचले दरजे का था और वहां का समाज नैतिकता, संस्कृति और राजनीतिक बुद्धिमत्ता से शून्य था। मैकाले के उस भाषण से, जिसके कारण वह बोर्ड के सचिव से भारत सम्बन्धी सुप्रीम कौंसिल के सदस्य बन गए, स्पष्ट है कि भारत आने से पहले ही उन्होंने भारत के इतिहास और सभ्यता के बारे में एक निश्चित विचार बना लिया था। उनके विचारों पर एक ऐसे दार्शनिक परिवर्तनवादी की छाप थी, जो पश्चिमी सभ्यता के भारतीय सभ्यता से श्रेष्ठ होने का दृढ़ विश्वास रखता हो और जिसकी भारत यात्रा का मूल लक्ष्य पश्चिमी ज्ञान के प्रसार से भारतीय समाज में परिवर्तन कर देना हो और ऐसे शिक्षण और उपयुक्त कानूनी प्रणाली द्वारा लोगों के विचारों और आदतों को बदल देना हो। एक बार एक भाषण में उन्होंने कहा था कि मैं देख रहा हूं कि भारत-वासियों पर यूरोप की नैतिकता, दर्शन और अभिरुचियों का उग्र प्रभाव पड़ रहा है। पश्चिम में उन्होंने प्रौद्योगिक विकास देखे थे, मशीन का उपयोग देखा था, परिवहन और संचार के अच्छे-अच्छे साधन देखे थे, सचेत और जागरूक जनता, पुस्तकालय, युक्तिसंगतता के प्रति लोगों का प्रेम, सार्वजनिक कर्त्तव्य के प्रति लोगों की तीव्र भावना, ऊंचे नैतिक-स्तर, प्रतिनिध्यात्मक संस्थाओं के प्रति लोगों में जोश और इन सब संस्थाओं के बीच उन्होंने प्रश्नात्मक भावना को देखा था, जो न केवल विधि, संविधान और सरकार के कार्यों का विश्लेषण करती थी, बल्कि मनुष्य के भाग्य को सुधारने के तरीके भी निकालती थी। दूसरी ओर भारत में उन्होंने बिलकुल दूसरी ही दुनियां देखी, जहां कानून अनिश्चित और परस्पर-विरोधी था। समाज विशृंखल था, नैतिक स्तर बड़े शिथिल थे, शिक्षा बौद्धिक या नैतिक सुधार के लिए बिल्कुल अपर्याप्त थी, लोगों के दिमाग बड़े गिरे हुए थे और वह बहुत बुरी तरह की राजनीतिक-धार्मिक निरंशुकता से त्रस्त थे।

उस समय का भारत

मैकाले के लिए भारत एक नैतिक समस्या ही नहीं, एक राजनीतिक समस्या भी था, इसलिए उनके अनुभव और ऐतिहासिक ज्ञान ने उन्हें सचेत कर दिया कि धर्म के मामले में तटस्थ रहना बहुत जरूरी है। वह आजीवन इस सिद्धान्त को मानते रहे। उनकी दृष्टि में पश्चिम में कहीं अधिक नैतिकता और कहीं अच्छा कानून था, जबकि भारत में बिल्कुल उल्टी बात थी।

अपने विश्लेषण में हम उन पर भारतीय ब्रिटिश संस्कृति की समस्या की अनुदार व्याख्या का आरोप लगा सकते हैं। हम उनके निर्णय से इस नाते भी असहमत हो सकते हैं कि श्वेत और अश्वेत के बीच कुछ और भी रंग हो सकते हैं, जिनमें कुछ गुण छिप जाते हैं और हमारा यह तर्क भी न्यायोचित है कि चूंकि कोई भी मनुष्य पूरी तरह से अच्छा नहीं होता, इसलिए किसी भी पक्ष को पूरी तरह से उचित नहीं ठहराया जा सकता। पर यह याद रखना चाहिए कि अकेले मैकाले ने ही हमारे उन्नीसवीं सदी के आरंभ के समाज पर ऐसा प्रकाश न डाला था। चार्ल्स ग्रांट, मिंटो, हेस्टिंग्ज जैसे अधिकारियों और कुछ दूसरे यात्रियों ने भी उसे वैसा ही बताया था।

उदारतावाद की सीमा

मैकाले के उदारतावाद की भी सीमा थी और वह भारत को प्रतिनिधि-संस्थाएं देने को तैयार न थे। इस बारे में उन्होंने मिल का यह वाक्य पेश किया था कि भारत को प्रतिनिधि-संस्थाएं दिया जाना एक अविचारणीय बात है। पर साथ ही मैकाले भारत को अच्छी सरकार देने के समर्थक थे। उनको आशा थी कि अच्छी सरकार पाकर भारतीयों की क्षमता अपेक्षाकृत और अच्छी सरकार के लिए बढ़ जाएगी। वह भविष्यदर्शी भी थे और वह मानते थे कि एक न एक दिन अंग्रेजी राज्य भारत से समाप्त हो जाएगा। उन्होंने यह स्पष्ट संकेत दिया है कि भारत पश्चिमी ज्ञान और विज्ञान की ओर अग्रसर होगा और उन्हें प्राप्त करके उसमें राजनीतिक स्वाधीनता के प्रति स्वाभाविक प्रेम जागृत होगा। तब भारत इंगलैंड से शासन भार अपने हाथ में ले लेगा और उसकी शासन-प्रणाली अपनायेगा। वह दिन इंगलैंड के लिए बड़े गर्व का दिन होगा। पर मैकाले का विचार था कि वह दिन बहुत ही दूर है। मैकाले के समसामयिक प्रमुख भारतीय नेता भी उस समय इंगलैंड से राजनीतिक सम्बन्ध तोड़ देना ठीक नहीं समझते थे। वह समय इसके लिए उपयुक्त न था। पहले पश्चिमी ज्ञान का प्रसार होना चाहिए। पहले भारत को पश्चिमी दुनियाँ का ज्ञान और अनुभव प्राप्त होना चाहिए। उन्नीसवीं सदी के शुरू का समय भारत में बड़ी उथल-पुथल का समय था। शक्ति को संगठित करने के लिए वह बड़ा दुर्बल था। विदेशी भारत में आकर जम रहे थे और लोगों में कोई चेतना न थी कि वे किस लिए आये हैं। विधवायें सती होती थीं। कन्याओं की हत्या कर दी जाती थी। दास-प्रथा चल रही थी। समाज में ठगों का भी जोर था। अपने ग्रंथों से हमें चिन्तन के लिए कोई प्रेरणा नहीं मिलती थी और हमारी शिक्षाप्रणाली पंडितों और मौलवियों को जन्म दे रही थी। वस्तुतः मैकाले ने भारत के बारे में जो कुछ कहा था, वह न तो झूठ था और न निराधार। लेकिन उन्होंने जिस जोशीले रूप में उस दशा का वर्णन किया था, उससे अनेक विवाद उठ खड़े हुए। ये उनके द्वारा निरूपित तथ्यों के बारे में इतने नहीं, जितने उसके निरूपण की शैली के बारे में थे।

मैकाले के इस रूप से भारतीय इतने सुपरिचित नहीं हैं, लेकिन एक शिक्षा-विशारद के रूप में और यह कहने वाले के रूप में कि 'एक अच्छे यूरोपीय पुस्तकालय का एक कोना ही भारत और अरब के समूचे साहित्य की तुलना कर सकता है—' भारतवासी न तो उन्हें भूले ही हैं और न उन्हें क्षमा ही कर सके हैं। बहुत समय से इतिहास-कार यह मानते रहे हैं कि मैकाले ही भारत में अंग्रेजी के सूत्रपात के लिए जिम्मेदार हैं और उनके 2 फरवरी, 1835 के प्रसिद्ध टिप्पण ने ही पूरे विवाद में एक ऐसा निश्चित मोड़ दिया, जिसने विलियम बेंटिंक को शिक्षा-सम्बन्धी प्रश्न पर निर्णय देने के लिए मजबूर कर दिया, हालांकि बहुत समय से अधिकारी इस प्रश्न को लेकर उलझन में पड़े हुए थे।

compiled and created by Bhartesh Mishra

मैकाले और अंग्रेजी

साधारणतः लोग यह नहीं मानते कि मैकाले के भारत आने से पहले ही बेंटिंक ने अंग्रेजी शिक्षा के बारे में अपने विचार बना लिए थे और 1829 में ही उसने लिखा था कि अंग्रेजी सभी सुधारों की कुंजी है। चार्ल्स ट्रैवेल्यन भी यही इरादा रखते थे और प्राच्य शिक्षा के ऊपर अंग्रेजी शिक्षा को महत्व देना चाहते थे। जन शिक्षण समिति के पाचों सदस्यों ने भी अंग्रेजी शिक्षा का पक्ष लिया था। 18 फरवरी, 1824 को भेजे गए कोर्ट आफ डायरेक्टर के डिस्पैच में भी, जिसका प्रारूप प्रसिद्ध उपयोगितावादी और इंडिया हाउस के परीक्षक विभाग के प्रमुख जेम्स मिल ने तैयार किया था, यह साफ-साफ कहा गया था कि भारतीय सरकार का लक्ष्य हिन्दू या मुसलमान शिक्षा न होकर उपयोगी शिक्षा देना होना चाहिए और 1824 से ही डायरेक्टर अंग्रेजी शिक्षा को प्रोत्साहन देने के पक्ष में थे और चाहते थे कि इसके लिए पहल भारत सरकार की ओर से की जाए।

उस समय के सबसे योग्य और प्रसिद्ध भारतीय राममोहन राय ने भी, जिनको मैकाले भी पसन्द करते थे, 11 दिसम्बर 1823 को लार्ड एमहर्स्ट को एक पत्र लिखा था जिसमें कलकत्ता में संस्कृत शिक्षा के सूत्रपात का विरोध किया गया था। उन्होंने इस पत्र में यह विचार व्यक्त किया था कि उस समय प्रचलित संस्कृत शिक्षा-प्रणाली इस देश को अंधकार में ही रखेगी और उन्होंने सरकार से अनुरोध किया था कि वह गणित, प्राकृतिक दर्शन रसायन आदि को शामिल करने वाली ऐसी शिक्षा-प्रणाली शुरू करे, जो उदार हो और लोगों को ज्ञान देने वाली हो। इसके लिए कुछ ऐसे प्रभावशाली लोग चुने जाएं, जिनकी शिक्षा-दीक्षा यूरोप में हुई हो। जरूरी किताबों और साधनों सहित एक कालेज भी खोला जाए। ईसाई धर्म के प्रेमियों ने हाउस ऑफ कामंस में 1813 ही में और चार्ल्स गांट ने 1792 में ही अपने एक लेख में यह संकेत दिया था कि नैतिक दृष्टि से भी भारत में अंग्रेजी शिक्षा जरूरी है। 1775 में ही फिलिप फ्रांसिस ने लार्ड नौर्थ को लिखा था कि प्रशासन द्वारा अंग्रेजी का लादा जाना बिल्कुल जरूरी नहीं है, क्योंकि भारतवासियों ने स्वयं अंग्रेजी की उपयोगिता को खूब समझ लिया है।

इस प्रकार मैकाले के भारत आने से पहले ही पृष्ठभूमि तैयार हो चुकी थी और बेंटिक उचित अवसर की ताक में थे। ट्रेवेल्यन और बेंटिक के बीच पहले ही इसके लिये साठ-गांठ हो चुकी थी। इसके लिये ऐतिहासिक आन्दोलन बहुत पहले से ही चल रहा था और ईसाई-धर्म और उपयोगितावादी विचारों ने तो इसे खास तौर पर प्रेरणा दी। इनके कारण भारत-वासियों में पहले से ही पश्चिमी शिक्षा-विज्ञान के प्रति उत्सुकता जागृत हो चुकी थी और वे उसे जरूरी समझने लगे थे।

पश्चिम और पूर्व

इसका अभिप्राय मैकाले और उनके टिप्पण का महत्व कम करना नहीं है। यह बड़ा जोशीला और अलंकारिकता से पूर्ण था। उसका मूल विचार यह था कि पश्चिमी ज्ञान भारतीय ज्ञान से उच्च है। कविता, इतिहास, अध्यात्म, नैतिकता, सरकार—सभी बातों में भारत यूरोप से बहुत पिछड़ा हुआ था। बेकन, शेक्सपियर, लाक, न्यू एडम स्मिथ और बेंथम आदि की तुलना के लोगों का भारत सर्वथा अभाव था। यहां कविता भावुकतापूर्ण थी इतिहास पुरा कथाओं पर आधारित था, शिक्षा पुरानी पड़ गई थी, और विज्ञा बहुत पुराना था। जेम्स प्रिंसेप जैसे लोग भी, जो प्राच्य-शि का समर्थन करते थे, भारतीय शिक्षा की तुलना में पश्चि शिक्षा की उच्चता से इनकार नहीं करते थे, यद्यपि व्यवहारि आधार पर वह पश्चिमी ज्ञान का प्रसार देशी भाषाओं माध्यम से करना चाहते थे। लेकिन मैकाले ने अपने टिप्पण में लिख कि इन बोलियों में न तो साहित्य था और न वैज्ञानिक जानकारी औ वे दरिद्र और अपर्याप्त भी थीं और सार्वजनिक धन का दुरुपयोग भ इतिहास, भद्दे दर्शन और भद्दे अध्यात्म के शिक्षण के लिये नहीं किया सकता था। मैकाले ने यह भी कहा कि स्वयं भारतीय पश्चिम ज्ञान की मांग कर रहे हैं। यह बात एलफिन्सटन ने भी मानी मैकाले ने यह भी कहा कि भारत में अंग्रेजी किताबें पहले तुलना में ज्यादा बिकती हैं और संस्कृत और अरबी किताबें खरीद वाले तो बिल्कुल मिलते ही नहीं। संस्कृत पढ़ने वाले छात्रों एक याचिका भेजी थी, जिसमें इनकी दुर्दशा का वर्णन था औ यह कहा गया था कि उन्हें रोजगार नहीं मिलता था और जनत की दृष्टि में उनका कुछ मूल्य न था। इस तर्क के विरुद्ध कि अंग्रेजी के माध्यम बन जाने से देशी भाषाओं की क्षति होगी, मैकाले ने कहा कि हमारा उद्देश्य ऐसे वर्ग की सृष्टि करना होना चाहिये जो हमारे और हमारे द्वारा शासित करोड़ों आदमियों के बीच दुभाषिये का काम करें। यह वर्ग रक्त और वर्ण में तो भारतीय हो, पर अभिरुचि, विचार, नैतिकता और बौद्धिक दृष्टि से अंग्रेजी हो। देशी भाषाओं को सुधारने और पश्चिमी विज्ञान से पारिभाषिक शब्दों को लेकर उन्हें समृद्ध करने का काम हम इन लोगों पर छोड़ सकते हैं। ये लोग धीरे-धीरे इन भाषाओं को जन समूह तक ज्ञान का प्रसार कर सकने का उपयुक्त माध्यम बना सकेंगे।

मैकाले को यह आशा थी कि बेंटिक उसके द्वारा सुझाई गई दिशा में ही निर्णय करेंगे। यद्यपि उनको पूरा भरोसा न था। लेकिन मैकाले और प्राच्य-वादियों के बीच सबसे बड़ा मतभेद यही था कि प्राच्यवादी चाहते थे कि देशी भाषाओं के द्वारा ज्ञान का प्रसार किया जाए अंग्रेजी कभी राष्ट्रभाषा नहीं बन सकती और अंग्रेजी के समर्थकों की योजना अव्यावहारिक है। इन लोगों ने सरकार को यह सुझाया था कि ब्रिटिश सरकार को वस्तुतः संभव बात ही करनी चाहिये और एक महान् या बड़ी चीज नहीं। वह यह भी सोचते थे कि अंग्रेजी शिक्षा से अनेक छात्रों और अध्यापकों की नौकरियां और वृत्तियां खत्म हो जायेंगी। लोगों में ब्रिटिश राज्य के विरुद्ध धार्मिक आधार पर अशांति बढ़ेगी, क्योंकि भारत में जो शिक्षा दी जाती है, वह धर्म से संबद्ध है। मैकाले एक बीच की या अन्तः कालीन व्यवस्था नहीं, बल्कि स्पष्ट फैसला चाहते थे। उन्होंने अपना विचार साहसपूर्ण, स्पष्ट और अतिरंजित रूप में रखा और उसमें उस मूर्ति भंजक की भावना अन्तर्निहित है, जो एक सुधारक का गुण और

compiled and created by Bhartesh Mishra

एक आलोचक का अवगुण है। उन्होंने अपना टिप्पण बेंटिक को देकर एक ऐसी स्थिति पैदा कर दी, जब एक न एक तरफ फैसला करना जरूरी हो गया और उसका टालना संभव न रहा। बेंटिक ने वास्तविकता और स्थिति की गंभीरता को समझा और मैकाले के विचारों से पूर्ण सहमति प्रकट की। मैकाले ने एक नई चीज पैदा की हो ऐसी बात नहीं, पर उन्होंने एक ऐसा सिद्धान्त पेश किया, जिसका न्यायिक आधार पर भी खण्डन मुश्किल था। यह कहना अनुचित न होगा कि बेंटिक ने मैकाले के टिप्पण में अपनी ही विचारधारा को प्रतिबिंबित पाया, भले ही उसमें जिस भावुकता का निरूपण था, वह उन्हें न रुची हो।

बेंटिक ने अपना निर्णय 7 मार्च, 1853 को एक संकल्प निकाल कर दिया, जिसमें कहा गया था: "कि ब्रिटिश सरकार का महान् लक्ष्य भारतवासियों में यूरोपीय साहित्य और विज्ञान का प्रचार होना चाहिये। शिक्षा के लिये जो भी रकम खर्च की जाती है उसका सदुपयोग अंग्रेजी शिक्षा पर ही हो सकता है"। सरकार की इस असावधान और साहसी नीति के विरोध में दो प्राच्यवादी जन-शिक्षण समिति से अलग हो गए और मैकाले उसके अध्यक्ष हो गये। इंगलैंड के अधिकारी बंगाल में शिक्षा-योजना में परिवर्तन के बारे में अपने आदेश भेजने के लिये अनिच्छुक थे और हौबहाउस ने खास तौर पर मैकाले के टिप्पण की उत्तेजक और बहस खड़ी करने वाली शैली का संकेत किया।

मैं नहीं समझता कि मैकाले के टिप्पण के अलावा किसी दूसरे भी सरकारी दस्तावेज ने भारतीय इतिहास के चित्र में इतने महान् परिवर्तन किये हैं या उसके कारण इतने विचार-विमर्श या इतने ऐतिहासिक चिन्तन हुए हैं या इतनी बहसें छिड़ी हैं। मैं समझता हूं कि इसने भारतीयों को और उनकी संस्कृति और सभ्यता को एक चुनौती दी और कुछ भारतीय और ब्रिटिश इतिहासकार (खास तौर पर विंसेंट स्मिथ और मैकडोनेल) भी मैकाले की इस चुनौती से प्रभावित हुए और भारत के प्राचीन इतिहास को पेश करने के लिये उन्होंने बहुत ही परिश्रम किया। साथ ही मैकाले के विचारों ने हमारे मन में यूरोपीय विचारों और विचारकों के प्रति एक अविश्वास की भावना भी जागृत की। इसका फल यह हुआ कि हमारी ओर से पूरे पश्चिम को विशुद्ध भौतिकवादी बता कर उसकी निन्दा करने की और भारत की तथाकथित आध्यात्मिक महानता का गौरव आंकने की कोशिश की गई। एडवर्ड थोमसन ने एक स्थान पर लिखा है कि महात्मा गांधी ने भी, जो कभी किसी के प्रति बुरी बात नहीं कहते थे, मैकाले और उसके टिप्पण की कुख्यात बताया है। हम यह भी बताने लगे कि किस प्रकार हमारी प्राचीन प्रणाली का लक्ष्य उदात्त था, भले ही आज वह हमारे लिये प्रशंसनीय न रहा हो।

मैकालेवाद

मैकाले ने भारत में ब्रिटिश राज्य की समाप्ति की जो भविष्यवाणी की थी, वह सच हो चुकी है। साथ ही भारतीय बुद्धिजीवियों के बारे में भी उसका स्वप्न सच्चा हुआ कि पश्चिमी शिक्षा और विज्ञान में पनपे हुए ये लोग अपने सभी दोषों के बावजूद कला, चिन्तन, राजनीति और विज्ञान के क्षेत्र में काफी प्रगति दिखा रहे हैं। विचारों में वह उग्र उथल-पुथल आई है, जिसने अपरिवर्तनशील-पूर्व की धारणा रखने वालों को चकित कर दिया है। जब मैं अपने चारों ओर ऐसे लोगों को देखता हूं, जो सद्-अभिप्राय वाले हैं, जो प्रजातंत्र, संस्कृति और विज्ञान के क्षेत्र में पश्चिमी विचारों के प्रति आकर्षित रहते हैं, धाराप्रवाहिक अंग्रेजी बोलते हैं, जिनका मस्तिष्क विपुल अध्ययन और आलोचना की सुदृढ़ता के कारण विस्तृत हो चुका है, जो हमारे पारंपरिक विश्वासों और दृष्टिकोणों की आलोचना करते हैं और हमारे समाज में शीघ्र ही परिवर्तन चाहते हैं—तो मैं सोचने लगता हूं कि शायद मैं यह कहते हुए कोई गलती नहीं करता कि चारों ओर मानों मैकालेवाद की भावना ही काम करती हुई दिखाई दे रही है।

गांधी वाणी

पुरातन और नवीन सभ्यता

आधुनिक सभ्यता की एक खास खूबी यह है कि आदमी की जरूरतें अनिश्चित रूप से कई गुनी बढ़ गई हैं। दूसरी ओर प्राचीन सभ्यता की खास विशेषता यह है कि इन जरूरतों को अनिवार्य रूप से एक अंकुश और संयम में कस कर रखा जाता है और उन पर बड़ी सख्ती के साथ नियंत्रण रखा जाता है।

* *

पश्चिमी सभ्यता से मेरा विरोध खास कर यही है कि बिना सोचे समझे अंधाधुंध उसकी नकल की जाय और यह नकल भी इस धारणा से की जाय कि एशिया वासी इसी लायक हैं कि वे पश्चिम से आने वाली हर चीज की बस नकल ही कर सकते हैं।

* *

मैं आधुनिक सभ्यता का निश्चय ही एक विरोधी रहा हूं और अब भी हूं।

* *

हम पश्चिमी सभ्यता को जज्ब करने के मात्र सोख्ता ही क्यों बन जायें?

(स्फुट)

compiled and created by Bhartesh Mishra

बिन्दु-बिन्दु विचार

- विचारक

रास और वृन्दनृत्य

युवावस्था उच्छृंखलता की अवस्था होती है और युवक-युवतियों को अबाध मिलने के अधिकाधिक अवसर प्रदान करना समाज के लिये हितकर नहीं है—जैसी धारणायें आज पुरानी पड़ गई हैं। विश्वविद्यालयों के स्तर पर युवक-समारोहों की एक परंपरा चलाई गई है। ये युवक-समारोह युवक-युवतियों के स्वस्थ संपर्क के साथ-साथ विभिन्न भागों के युवकों के एक स्थान पर एकत्र होने के कारण भारत की सामाजिक संस्कृति को दृढ़ करने में सहायक होंगे, ऐसी आशा की जा रही है। इस साल मैसूर के युवक-समारोह में कुछ अप्रिय घटनायें घट गईं, पर इस कारण सिद्धान्ततः इन समारोहों को गलत नहीं ठहराया जा सकता।

पर इस समय हमारी इस चर्चा का उद्देश्य युवक-समारोहों की सामान्य बात के औचित्य-अनौचित्य का निर्णय करना नहीं है। नवंबर, 59 की 'मैनकाइंड' में एक पत्र में एक सज्जन ने यह प्रश्न उठाया है कि हमें अपने वृन्द-नृत्य या रास की परंपरा को भी पुनर्जीवित करना चाहिये। यह एक ऐसा विषय है, जिस पर हम लोगों का ध्यान आकर्षित होना चाहिये। रामलीला और रासलीला के रूपों में अपेक्षित सुधार करने की आवश्यकता की बात 'संस्कृति' के पिछले अंक में उठाई गई थी। रासलीला का जो रूप परंपरा से आज बचा है, वह पारसी थ्येटर से इतना प्रभावित है कि उसमें कृष्ण की विभिन्न लीलायें एक भोंड़े नाटक के रूप में ही पेश की जाती हैं। एकाध नृत्य भी भरती के ही होते हैं। कम से कम उनसे 'रास' का नाम सार्थक नहीं हो सकता। जब हम अपनी संस्कृति के अनेक रूपों को पुनर्जीवित करने के लिये अग्रसर हो रहे हैं, तब यह सर्वथा विचारणीय ही है कि क्या 'रास' या 'वृन्द नृत्य' के कला-माध्यम को आज के प्रसंग में किसी रूप में फिर से पनपाया जा सकता है।

अन्तर्राष्ट्रीय युवक-समारोहों में भाग लेने के लिये भारत से जो युवक जाते हैं, उन्हें इन वृन्द नृत्यों का अभ्यस्त न होने से हिचक होती है, यही बात 'मैनकाइंड' के उक्त पत्र में उठाई गई है। उसका सुझाव है कि जहां हमने पश्चिम से अन्य अनेक सांस्कृतिक परंपराओं को अपनाया है, वहां हमें ये बालरूम नृत्य भी अपना लेने चाहिये। इससे

compiled and created by Bhartesh Mishra

युवकों का बड़ा ही स्वस्थ मनोरंजन होता है, आदि ।

कारण कुछ भी हो, बालरूम नृत्यों की यह परंपरा पश्चिम से हमारे बड़े नगरों के तथाकथित उच्च समाज में प्रवेश पा चुकी है। बालरूम में ऊंचे दरजे के चायघरों में या बर्फ पर स्केटिंगों आदि में यह भारत में भी एक जीवित संस्था बन चुकी है। अब प्रश्न यही है कि क्या इसका किसी भी रूप में भारतीयकरण किया जा सकता है ? क्या रौक एंड रौल या, 'जैज़' की जगह पर भारतीय ध्वनियों के साथ भी ये नृत्य पेश किये जा सकते हैं ? क्या इनको भारत के देहातों तक पहुंचाया जा सकता है ? क्या भारतीय लोकनृत्यों के साथ इनका सामंजस्य स्थापित किया जा सकता है ?

पं० हरिशंकर शर्मा को डी० लिट्

21 नवम्बर को हुए दीक्षान्त समारोह में आगरा विश्वविद्यालय ने पं० हरिशंकर शर्मा को सम्मान में डी० लिट् की उपाधि प्रदान की है। पं० हरिशंकर शर्मा पुरानी पीढ़ी के एक उच्च साहित्यकार हैं। ब्रजभाषा और खड़ी बोली के कवि के अतिरिक्त हिन्दी जगत् में वह अपने नुकीले व्यंग्यों के कारण भी सुप्रसिद्ध हैं और उन्हें 'हास्यरसावतार' तक कहा जाता है। एक ऐसे विद्वान् के अभिनन्दन के लिये आगरा विश्वविद्यालय हमारे धन्यवाद का पात्र है ।

प्रमुख कवियों के संग्रहों का प्रकाशन

बिहार की विद्यापति परिषद् ने एक योजना बनाई है, जिसके अनुसार मैथिल–कोकिल विद्यापति के साहित्य का एक संग्रह तैयार किया जायेगा और उसे प्रकाशित किया जायेगा। अभिनव –जयदेव विद्यापति की पदावली के कुछ संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं, किन्तु अभी उनके बहुत से पद मौखिक अनुश्रुति में ही चल रहे हैं। परिषद् इन सभी पदों का एक यथासंभव पूर्ण और प्रामाणिक संग्रह प्रकाशित करना चाहती है। विद्यापति परिषद् को इस योजना के लिये बिहार की राष्ट्रभाषा परिषद् का भी समर्थन प्राप्त है ।

महाकवि सूर के पदों के प्रकाशन के लिये ऐसी ही एक योजना की घोषणा ब्रज साहित्य मंडल ने की है। यह घोषणा सूर संबंधी एक चार दिन की गोष्ठी के उपरान्त की गई ।

इन दोनों ही योजनाओं का सर्वत्र स्वागत किया जायेगा। जहां विद्यापति बंगला और हिन्दी के बीच की एक कड़ी हैं (यह याद रहे कि बंगाल के साहित्यकारों ने अनेक बार विद्यापति को बंग कवि प्रमाणित करने के प्रयत्न किये हैं), वहां सूरदास उस ब्रजभाषा के सर्वोच्च कवि हैं, जो कभी समग्र मध्यदेश की राष्ट्रभाषा थी। हम आशा करते हैं कि अन्य साहित्यिक –संस्थायें भी आगे आकर ऐसे अन्य महाकवियों के बारे में कार्य करेंगी, जिन पर अभी काम की काफी गुंजाइश है ।

साहित्यिक आदान-प्रदान

'तास' के एक समाचार के अनुसार आधुनिक हिन्दी महाकवि सुमित्रानन्दन पन्त की कुछ कविताओं का एक संग्रह मास्को से प्रकाशित किया गया है। अधिकांश कविताओं का पूरा-पूरा रूसी अनुवाद भी साथ-साथ दिया गया है। मास्को का विदेशी साहित्य प्रकाशन गृह समय-समय पर विदेश के उच्च कोटि के साहित्यकारों की कृतियां रूसी जनता के लिये उपलब्ध करता रहता है। भारत के कई कवियों, कहानीकारों और उपन्यासकारों की कृतियां अब तक रूस में प्रकाशित हो चुकी हैं ।

यह 'प्रदान' की बात निःसन्देह अभिनन्दनीय है और हमारे साहित्यकारों के एक दूसरे राष्ट्र की जनता को हमारी संस्कृति से परिचित करने में ये अनुवाद निश्चय ही बड़े सहायक सिद्ध होंगे। इसके इस 'प्रदान' पर प्रसन्न होने के साथ ही हमें 'आदान' के प्रश्न पर भी गंभीर विचार करना चाहिये। भारतीय भाषाओं में विदेशी भाषाओं से आदान के रूप में जो कुछ आया है, उसका अधिकांश अंग्रेजी से ही आया है। अंग्रेजी के बाद दूसरा नंबर शायद रूसी भाषा का ही होगा। हम मानते हैं कि अंग्रेजी और रूसी विश्व की समृद्धतम भाषायें हैं, पर हमने इनसे जो कुछ अब तक लिया है, उससे ही हमें सन्तुष्ट नहीं हो जाना चाहिये। फिर प्रश्न विश्व की दूसरी अनेक भाषाओं से आदान करने का भी है। जिस प्रकार दुनियां के विश्वविद्यालय भारत-विद्या-विशारदों की एक परंपरा पैदा करते रहे हैं, उसी तरह हमारे विश्वविद्यालयों को भी अमेरिकी-विद्या-विशारद, मिस्र-विद्या-विशारद, रूस-विद्या-विशारद आदि की परंपरा खड़ी करनी चाहिये ।

अलतेकर और सारस्वत

भारतीय सांस्कृतिक क्षेत्र की दो महान् विभूतियों के निधन का समाचार हमें प्रायः साथ-साथ ही मिला। इनमें से पहली महान् विभूति डा० अनन्त सदाशिव अलतेकर हैं, जो काशीप्रसाद जायसवाल अनुसंधान संस्थान पटना के निदेशक थे। इसके पहले डा० अलतेकर बनारस और पटना विश्वविद्यालयों में

compiled and created by Bhartesh Mishra

प्राच्य इतिहास के प्रोफेसर रह चुके थे। डा० अलतेकर भारतविद्या और विशेषत: भारतीय इतिहास तथा संस्कृति के एक अगाध विद्वान् थे। उनके अनेक ग्रंथों ने भारत के प्राचीन इतिहास और संस्कृति के अनेक पहलुओं पर प्रकाश डाला है। प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति और प्राचीन भारतीय शासन पद्धति पर तो आपने अनूठे ग्रंथ लिखे ही हैं, भारतीय सभ्यता में नारी का स्थान, पश्चिमी भारत की ग्राम संस्थाओं का इतिहास जैसे विषयों पर भी आपने पृथक् ग्रंथ लिखे हैं। राष्ट्रकूट, वाकाटक, गुप्त और शिलाहार वंशों के बारे में भी आपने विशेष कार्य किया है। डा० अलतेकर की शोध-प्रवण प्रतिभा प्राचीन भारतीय इतिहास के अंधकारपूर्ण कोनों पर विस्तृत प्रकाश डालने में विशेष रुचि लेती थी। वह सदैव एक मौलिक दृष्टिकोण प्रस्तुत करते थे। डा० अलतेकर के निधन से हमें जो क्षति हुई है, उस अभाव की निकट भविष्य में संपूर्ति कठिन ही जान पड़ती है।

पं० केदारनाथ शर्मा सारस्वत संस्कृत के प्रकांड पंडित थे। वह अ० भा० संस्कृत साहित्य सम्मेलन के मेरुदंड के समान थे। राजशेखर की काव्यमीमांसा का अनुवाद आपके निर्देशन में बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् की ओर से निकला था, जिसका सर्वत्र स्वागत किया गया है। आजकल सारस्वत जी परिषद् के अनुरोध पर गुणाढ्य की बृहत्कथा का अनुवाद कर रहे थे, जो दुर्भाग्यवश अधूरा रह गया। सारस्वत जी अनेक संस्कृत पत्र-पत्रिकाओं के संपादक भी रह चुके हैं। सुप्रभातम्, वनौषधि, रसायनसार और सारस्वती सुषमा जैसे पत्रों का उन्होंने संपादन किया था। सारस्वत जी के निधन में हमने संस्कृत की सहज और लोकप्रिय शैली का एक उन्नायक ही नहीं, संस्कृत साहित्य के प्रचार कार्य का एक अग्रणी नेता भी खो दिया है।

भारतीय चिन्तन की इस प्रवृत्ति के लिये भी कुछ स्थान चाहिये कि वह विशेष की अपेक्षा सामान्य के प्रति अधिक रुचि दिखाती है।

—कीथ

compiled and created by Bhartesh Mishra

सांस्कृतिक समाचार

भारतीय समाचार

बुक ट्रस्ट का अनुवाद कार्यक्रम

नेशनल बुक ट्रस्ट के अध्यक्ष श्री चि० द्वा० देशमुख ने हाल में बताया कि ट्रस्ट ने भारत की प्रमुख भाषाओं में अनुवाद के लिये चालीस किताबें चुनी हैं। दूसरी चालीस किताबें विचाराधीन हैं। जो पहली पांच किताबें प्रेस में हैं, उनमें डा० राधाकृष्णन् के ग्रन्थ 'कल्कि' के तेलुगु और मराठी रूपांतर हैं और हिन्दी का उपन्यास 'ज्वालामुखी' भी है। उसके बाद पं० नेहरू के विश्व इतिहास की झलक, डा० सी० वी० रमन के आस्पैक्टस आफ साइंस, आनन्द कुमार स्वामी के 'इन्ट्रोडक्शन टू इंडियन आर्ट' और डा० होमी भाभा का अणु शक्ति सम्बन्धी ग्रन्थ अनुवाद के लिये लिया जायेगा। (यूनेस्को)

साहित्य अकादेमी के पुरस्कार

साहित्य अकादेमी के कार्यकारी मंडल की बैठक 5 दिसम्बर को प्रधान मंत्री श्री नेहरू की अध्यक्षता में हुई, जिसमें निम्न पुस्तकें पुरस्कृत की गईं :—

(1) संस्कृत के चार अध्याय (हिन्दी) ले० रामधारी सिंह 'दिनकर'।

(2) कलकत्तार काछेई (बंगला) ले० श्री के० एस० करंथ।

(3) भारतीय साहित्य शास्त्र (मराठी) ले० श्री जी० वी० देशपांडे।

(4) बड्डा वेला (पंजाबी) ले० श्री मोहन सिंह।

(5) उर्दू ड्रामा और स्टेज (उर्दू) ले० सैयद मसूद हसन रिजवी।

लेखकों के ये पुरस्कार 13 फरवरी को नई दिल्ली में विशेष समारोह में प्रधान मंत्री के जरिये दिए जाएंगे। (हि० 7.12)

राज्यों की गतिविधियाँ

आन्ध्र प्रदेश

भारतीय भाषाओं का विकास

आन्ध्र सारस्वत परिषद् के हाल का शिलान्यास करते हुये प्रो० हुमायून् कबिर ने 9 अक्टूबर को हैदराबाद में कहा कि भारतीय भाषाओं में लोकप्रिय साहित्य का लिखा जाना बहुत जरूरी है। इसके लिये एक निश्चित योजना बनाई जानी चाहिये। (मेल, 12.10)

दुर्लभ अरबी ग्रन्थ

प्रसिद्ध अरबी विद्वान् प्रो० मोहम्मद निज़ामुद्दीन के, जो उसमानियां विश्वविद्यालय के प्राच्य प्रकाशन ब्यूरो के डाइरेक्टर हैं, सम्पादन में मोहम्मद अलबरूनी के प्रसिद्ध यूनानी चिकित्सा ग्रन्थ का नया संस्करण निकाला जा रहा है। (यूनेस्को)

आसाम

भारतीय इतिहास कांग्रेस

सुप्रसिद्ध पुराविद् डा० अनन्त सदाशिव अलतेकर ने उक्त कांग्रेस के लिये तैयार किये गये अपने अध्यक्ष-भाषण में, जो उनके असामयिक निधन के कारण पढ़कर सुनाया गया, कहा कि नागार्जुनकोंडा की तरह आर्य-हड़प्पा (अनार्य) समस्या को सुलझाने के लिये भारत सरकार को पचास लाख रुपये खर्च करने चाहिये और पुरातत्व विभाग की यह खास योजना होनी चाहिये। उन्होंने विश्वविद्यालयों में गवेषणा केन्द्र खोलने का भी सुझाव दिया। (हि० 29.12)

प्रागितिहास और इतिहास

उक्त कांग्रेस के लिये अपने संदेश में राष्ट्रपति डा० राजेन्द्र प्रसाद ने कहा है कि प्रागितिहास काल का अधिकांश इतिहास इतिहास-काल में लाने के लिये कोशिश की जानी चाहिये। ऐतिहासिक काल के बीच भी कुछ ऐसा समय है, जिसके बारे में हमें जानकारी नहीं। (हि० 28.12)

उड़ीसा

भारत-विद्या संस्था की स्थापना

अ० भा० प्राच्य सम्मेलन के 20वें अधिवेशन के सभापति पद से भाषण देते हुये डा० बी०बी०

compiled and created by Bhartesh Mishra

मिराशी ने भारत सरकार से अनुरोध किया कि वह शीघ्र ही केन्द्रीय भारतविद्या संस्था की स्थापना करे । उन्होंने आशा व्यक्त की कि भारत सरकार ऐसी संस्था की नितांत आवश्यकता को देखते हुये शीघ्र ही कदम उठायेगी । ऐसी संस्था की स्थापना तो राष्ट्रीय अकादेमियों से भी ज्यादा महत्वपूर्ण है । (हिं० स्टै० 4.10)

उत्तर प्रदेश

मंगलाप्रसाद पारितोषिक

संवत् 2014 का व्यावहारिक विज्ञान संबंधी पारितोषिक डा० फूलदेव सहाय वर्मा को उनकी रचना 'ईख और चीनी' पर देने का निर्णय हुआ है । यह पुरस्कार बारह सौ रुपये का है (हि० 28.12)

रूपकुंड क्षेत्र की सुरक्षा की आवश्यकता

मानवविज्ञान विभाग के अध्यक्ष श्री डी० एन० मजूमदार ने, जो रूपकुंड झील की रहस्यमय अस्थियों के बारे में काफी समय से अनुसंधान कर रहे हैं, इस बात पर ज़ोर दिया है कि इन अस्थियों की सुरक्षा जरूरी है । श्री मजूमदार ने प्रतिवेदन में कहा है कि इन अस्थियों में मुंह की हड्डी इतनी बड़ी है कि साढ़े छः फीट लम्बे आदमी की ही हो सकती है । (हि 31.10)

नागरी लिपि

प्रयाग में हिन्दी साहित्य सम्मेलन के दीक्षान्त समारोह में भाषण करते हुए पंजाब के राज्य-पाल श्री गाडगील ने कहा कि भाषा संबंधी सभी विवादों का हल देवनागरी लिपि का पूरे देश में अपना लिया जाना है । भाषा और लिपि में अनिवार्यता का संबंध नहीं है । (हिं० 4.1)

प्राचीन संस्कृति में शोध के लिये संस्था

अ० भा० काशीराज ट्रस्ट ने प्राचीन भारतीय संस्कृति शोध कार्य के लिये एक संस्था स्थापित करने का निर्णय किया है । यह संस्था दुनियां की प्राचीन संस्कृति का तुलनात्मक अध्ययन भी करेगी । काशी नरेश ने तुलसी के रामचरितमानस का एक प्रामाणिक संस्करण निकालने के लिये 50,000 रुपये का दान दिया है । इस निधि की व्यवस्था उक्त ट्रस्ट ने अपने हाथ में ले ली है । उक्त योजना के अन्तर्गत हिन्दी साहित्य के अन्य कई ग्रन्थों को भी प्रकाशित किया जायेगा । (स० स्टे० 18.10)

संगीत और प्राचीन संस्कृति

प्रयाग संगीत समिति के दीक्षान्त समारोह में भाषण देते हुये काश्मीर के वाणिज्य व उद्योग मंत्री श्री श्यामलाल सर्राफ ने कहा कि संगीत हमारी प्राचीन संस्कृति की एक महान् निधि है । आज ग्रामोफोन, रेडियो और टेलीविज़न के कारण संगीत सुनने वालों की संख्या बहुत ज्यादा हो गई है जितनी पहले कभी नहीं थी । (ली० 19.10)

श्री गिरि व श्री हरिशंकर शर्मा को पदवी

आगरा विश्वविद्यालय ने 21 नवम्बर को अपने दीक्षांत समारोह में उत्तर प्रदेश के राज्यपाल श्री वी० वी० गिरि को एल० एल० डी० की और हिन्दी के लेखक व पत्रकार श्री हरिशंकर शर्मा को डी० लिट् की सम्मान-सूचक पदवियां प्रदान कीं । (हि० 23.11)

कुमाऊं के लोक-नृत्य

कुमाऊं के लोक नृत्यों को पुनर्जीवित करने के लिये नैनी-ताल के भारतीय केन्द्र ने स्तुत्य कार्य किया है । उसने कई ऐ नृत्यरचनायें तैयार की हैं नृत्य के आधुनिक नियमों अनुकूल होते हुये भी पुराने लो नृत्यों पर आधारित हैं । (ई० ए 7.12)

सूर गोष्ठी में सूर साहित्य प्रामाणिक प्रकाशन का निश्च

मथुरा में नवम्बर सन् 195 को एक चार दिवसीय सूर गोष्ठ आयोजित की गई । इस सेमिना में एक सूर संग्रहालय की स्थापन और सूर साहित्य के प्रामाणि ग्रंथों के प्रकाशन पर विचार कि गया । सूर साहित्य के संग्र सम्पादन और व्यवस्था के लि 21 सदस्यों की एक परिषद् गठन किया गया, जिसमें सर्व धीरेन्द्र वर्मा, हजारीप्रस द्विवेदी, वासुदेव शरण अग्रवा सत्येन्द्र, माताप्रसाद गुप्त, डा नगेन्द्र एवं गोपाल प्रसाद व्य के नाम उल्लेखनीय हैं । श्री पिंडारा इस परिषद् के संयोज नियुक्त किये गये हैं । इस गोष्ठी यह भी निर्णय किया गया है कि मथुरा में एक सूर संग्रहालय की स्थापना की जाए । (हि० 10.15)

उर्दू के लेखकों को राजकीय पुरस्कार

उत्तर प्रदेश सरकार ने चौद उर्दू लेखकों को उनकी सर्वोत्त कृतियों पर 6,750 रुपयों के पुरस्कार वितरित किये हैं ।

एक हजार रुपये के पुरस्कार प्राप्तकर्त्ता :—

1. श्री एस० सबहउद्दीन अब्दुर्रहमान (सिवली एकेदेमी, आजमगढ़)
2. श्री सैयद मसूद हसन रजवी, (अदबिस्तान, दीन दयाल रोड लखनऊ) हैं ।

इसके अतिरिक्त साढ़े सात सौ रुपयों के तीन पुरस्कार और ढाई सौ रुपयों के आठ पुरस्कार

compiled and created by Bhartesh Mishra

वितरित किये गये हैं। (हि० 5.12)

केरल

सिक्कों संबंधी प्रकाशन

केरल के पुरातत्व विभाग ने केरल के सिक्कों पर एक विवरण पुस्तिका प्रकाशित करने का निश्चय किया है। इसमें केरल के सिक्कों के विकास-परिणामों और ऐतिहासिक महत्वों की विस्तृत जानकारी दी जायेगी (हि० 22.12)

दिल्ली

संसद् भवन में तीन चित्रों का अनावरण

संसद् भवन के केन्द्रीय कक्ष में 16 दिसम्बर को राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद ने स्वर्गीय मौ० अबुल कलाम आजाद, श्रीमती सरोजिनी नायडू और श्री विजय राघवाचार्य के चित्रों का संसद्-सदस्यों के समक्ष अनावरण किया। इस अवसर पर उन्होंने और नेहरू जी ने तीनों नेताओं की देश सेवा और स्वाधीनता आन्दोलन में योग का हृदयस्पर्शी चित्रण किया। राष्ट्रपति ने दो उपस्थित चित्रकारों सर्वश्री के० के० हेबर और श्री ए० पी० सन्तानराज को फूलों के गुच्छे दिये। समारोह में प्रधान मंत्री श्री नेहरू ने कहा कि ऐसे व्यक्ति वास्तव में राजनीति के स्तर को अपने आदर्श से उठाते हैं। हमें गर्व होता है कि उन लोगों के साथ काम करने का हमें सौभाग्य मिला। (हि० 17.12')

पंजाबी कवि को श्रद्धांजलि

नई दिल्ली में 5 दिसम्बर को हुई एक सभा में पंजाबी संत कवि भाई वीरसिंह के 87वें जन्म दिवस पर अनेक विशिष्ट व्यक्तियों ने उनकी रचना की प्रशंसा की। प्रो० हुमायून् कबिर ने कहा कि भाई वीरसिंह ने जो कुछ दिया है, उसका स्थायी महत्व है। भारतीय भाषाओं के विकास पर महत्व देते हुए उन्होंने कहा कि पश्चिमी भाषाओं के जानने वाले प्रत्येक व्यक्ति को यह शपथ लेनी चाहिये कि वह कम से कम एक विदेशी ग्रन्थ का एक प्रादेशिक भाषा में अनुवाद करेगा। भारत के मुख्य न्यायाधीश श्री बी० पी० सिन्हा ने कहा कि भाई वीरसिंह ने पंजाबी भाषा को बहुत समृद्ध किया है। (हि० टा० 6.12)

वियतनाम का सांस्कृतिक दल

वियतनाम से आए हुए सांस्कृतिक दल ने 5 दिसम्बर को नई दिल्ली में संगीत, लोकगीत तथा नृत्य के रोचक कार्य-क्रम उपस्थित किये। मधुर संगीत ने दर्शकों को मुग्ध कर दिया। सांस्कृतिक शिष्टमण्डल ने सप्रू हाउस में पौने दो घण्टे का सरस और मनोरंजक नृत्य प्रस्तुत किया। आगे भी कार्य-क्रम हुआ, जिसमें छात्रों के लिये टिकटों की रियायत कर दी गई। इन प्रदर्शनों से एकत्र धन प्रधान मंत्री के राष्ट्रीय सहायता कोष में दिया गया (हि० 6.12)

देवनागरी लिपि

अ० भा० देवनागरी प्रचार सम्मेलन के लिये दिये गये सन्देश में राष्ट्रपति डा० राजेन्द्र प्रसाद ने सभी भाषाओं के लिये देवनागरी लिपि के प्रचलन को बढ़ाने का स्वागत किया। उन्होंने कहा कि समान लिपि का विकास भारतीय भाषाओं के विकास और समृद्धि के लिये सबसे ज्यादा ठोस और रचनात्मक कदम है। (हि० 2.1)

नाटक विद्यालय के लिये सोवियत पुस्तकें

अखिल रूस रंगमंच सोसाइटी की ओर से भारत स्थित सोवियत दूतावास के सलाहकार ने 7 दिसम्बर को सोवियत रंगमंच कला क सिद्धान्त और इतिहास सम्बन्धी कुछ पुस्तकें नेशनल स्कूल आफ ड्रामा और एशियाई थ्येटर संस्था को भेंट में दीं। (स्टेट० 8.12)

रूस की प्राचीन यादगार-प्रदर्शनी

केन्द्रीय वैज्ञानिक अनुसंधान और सांस्कृतिक कार्य मंत्री प्रो० हुमायून् कबिर ने शुक्रवार को 'फाइन आर्टस् सोसाइटी' के कला-कक्षों में 'रूस की प्राचीन यादगार' शीर्षक प्रदर्शनी का उद्घाटन करते हुए कहा कि ऐसी प्रदर्शनियों से भारत और रूस एक दूसरे के अधिक निकट आ सकेंगे। इस समय रूस के निर्माण कला विशेषज्ञ प्रो० गोरी ने बताया कि प्रदर्शनी में रूस में नौ शताब्दी से हो रहे निर्माण कामों की फोटो-झांकियां हैं। (हि० 20.11)

ज्योतिष कालेज

संस्कृत रिसर्च की अनुसंधान समिति के अध्यक्ष, संसद् सदस्य महाराजा मानवेन्द्र शाह ने कहा कि शीघ्र ही एक कालेज खोला जायेगा, जिसमें ज्योतिष शास्त्र की कक्षायें ली जायेंगी। इस संस्था ने जनता के आग्रह पर जन्म पत्रों, टेवे और वर्ष फल को वैज्ञानिक ढंग से तैयार करने की योजना बनाई है। ज्योतिष में अनुसंधान करने के लिये एक हजार कुंडलियां 29 फरवरी, 1960 तक रजिस्टर की जायेंगी।

संस्था का अपना भवन होगा जिसमें कालेज पुस्तकालय और छात्रावास ज्योतिष छात्रों के लिये होंगे। संस्था 'बटेश्वर सिद्धान्त' और 'चन्द्रमा का स्वाध्याय' नामक पुस्तकें प्रकाशित कर रही है, और उसने एक मासिक पत्रिका ज्योतिष विज्ञान भी निकाली है (हि० 8.12)

इप्टा का मुख्यालय

इण्डियन पीपुल्स थियेटर एसोसियेशन ने अपना मुख्यालय

compiled and created by Bhartesh Mishra

कलकत्ता से दिल्ली लाने क फैसला किया है । राज्यों की समितियों से कहा गया है कि वे हर राज्य में पूरे समय काम करने वाले नाट्यदल स्थापित करने के तरीके खोजें । यह निर्णय राष्ट्रीय प्रशासी समिति ने किये हैं । (हि० स्टे० 29.10)

हस्तकला सप्ताह और प्रदर्शनी

पांचवें अखिल भारतीय हस्तकला सप्ताह और प्रदर्शनी की परिसमाप्ति पर दिल्ली के चीफ कमिश्नर श्री आनन्द दत्तात्रेय पंडित ने कहा कि कला के बिना जीवन नीरस हो जाता है । मशीन युग में हस्तकला की वस्तुओं को प्रोत्साहन देकर ही कला को जीवित रखा जा सकता है । श्री पंडित ने, जो 16 दिसम्बर को केन्द्रीय निर्माण, आवास और संभरण मंत्रालय में संयुक्त सचिव का पद संभाल रहे हैं, आगे कहा कि अपने घर को सजाने और दैनिक व्यवहार के लिये हस्तकला की चीजें ही खरीदनी चाहियें ।

प्रारंभ में दिल्ली उद्योग सलाहकार बोर्ड के अध्यक्ष डा० युद्धवीर सिंह ने बताया कि इस सप्ताह में तीस-चालीस हज़ार व्यक्तियों ने प्रदर्शनी देखी और इस इम्पोरियम में दस हजार रुपये की चीजें बिकीं । (हि० 15.11)

संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान् का निधन

संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान् श्री केदारनाथ शर्मा सारस्वत का 5 दिसम्बर को इर्विन अस्पताल में शिर की नाड़ी फट जाने से देहान्त हो गया । स्व० केदारनाथ शर्मा अ० भा० संस्कृत साहित्य सम्मेलन के पुनर्गठकों में से एक थे । पिछले दिनों आप केन्द्रीय संस्कृत मण्डल के सदस्य चुने गये थे । साठ वर्ष की अवस्था में भी आप इन दिनों कथा सरित्-सागर का हिन्दी अनुवाद, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् के लिये कर रहे थे, जो लगभग पूर्ण हो चुका है । (न० टा० 7.12)

पंजाब

पुराने युग में मनुष्य

शिवालिक पहाड़ियों के भूतत्वीय अध्ययन से पता चलता है कि भारत में पुराने जमाने के मनुष्य रहते थे । ऊपरी शिवालिक की चट्टानें निचले प्लिस्टोसीन वर्ग की हैं जिनका समय लगभग दस लाख वर्ष पूर्व है, इनमें कुछ स्तनपायी जन्तुओं के फासिल अवशेष मिले हैं । (फी० प्रे० ज० 23.10)

चंडीगढ़ में साहित्य भवन की योजना

पंजाब सरकार ने तीसरी पंचवर्षीय योजना के दौरान चंडीगढ़ में साहित्य भवन बनाने का प्रस्ताव किया है । भवन में पुस्तकालय, खुला रंगमंच, माइक्रोफिल्मिंग और टेप रिकार्डिंग का विभाग बनेगा और हिन्दी, पंजाबी और उर्दू भाषाओं के विकास के लिये 1,13,00 रुपये, लेखक कोष के लिये, एक लाख रुपये और चार दक्षिणी भाषाओं, दो एशियाई भाषाओं और छः यूरोपीय भाषाओं के अध्ययन के लिये दस लाख रु० छात्रवृत्तियों के रूप में रखे जायेंगे । (हि० 22.10)

बंगाल

एशियाटिक सोसाइटी का भवन

केन्द्रीय वैज्ञानिक अनुसंधान और सांस्कृतिक कार्य मंत्री प्रो० हुमायून् कबिर ने 7 नवम्बर, 1959 को एशियाटिक सोसाइटी, कलकत्ता के भवन की नींव रखी । सोसाइटी का जन्म 1784 में हुआ था । प्रो० कबिर ने कहा कि भारत में कुछ विशेष महत्वपूर्ण वैज्ञानिक और सांस्कृतिक सफलताएं सोसाइटी के क से ही मिली हैं । (स्टे० 8.1

चितरंजन दास की जीवनी

'भारत के निर्माता' माला जो केन्द्रीय सरकार के तत्वाव में निकलेगी, पहली पुस्तक देश चितरंजनदास के ऊपर होगी देशबन्धु के नवासीवें जन्म-दि पर एक समारोह में प्रो० व ने उक्त पुस्तक की प्रूफ उसके लेखक डा० हेमेन्द्रनाथ गुप्त को भेंट दी । (स्टे 7.1

ताड़पत्र लिखित वेद की टी प्राप्त

संस्कृत कालेज, कलकत्ता अनुसंधान विभाग के प्र दुर्गमोहन भट्टाचार्य ने कहा कि उन्होंने अथर्ववेद की पिप्प टीका की ताड़ के पत्ते पर लि हस्तलिखित लिपि का पता लगा है । यह लिपि बालासोर जि (उड़ीसा) के मकण्ड गांव है । सन् 1873 में पिप्प टीका काश्मीर में पाई गई और अभी तक अथर्ववेद की टीकाओं में से केवल दो टीक शौनकीय तथा पिप्पलाद प्रा हुई हैं (हि० 12.11)

टैगोर विश्वविद्यालय

साहित्य नाटक, नृत्य त संगीत जैसी सांस्कृतिक गति विधियों को प्रोत्साहन देने के लि कलकत्ता में टैगोर विश्वविद्याल की स्थापना की जाएगी ।

इस उद्देश्य के लिये बंग सरकार ने कवि टैगोर के पुश्तै मकान का एक भाग प्राप्त करने का निर्णय किया है (न० भा० 6.12)

बंबई

स्व० आप्टे के कार्य की सराह

राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद स्व० प्रिंसिपल वामन शिवर आप्टे के, जिन्होंने साठ वर्ष अंग्रेज़ी कोष तैयार किया

compiled and created by Bhartesh Mishra

प्रयत्नों की सराहना करते हुए कहा कि संस्कृत के महान् विद्वान् के प्रति आदर प्रकट करना उचित ही है। ऐसे कोष संसार में सर्वत्र ज्ञान के स्रोत हैं और ऐसे कोषों से अनुसंधान कार्य में बड़ी मदद मिलती है। (हि० 4.11)

लेखक की प्रिय कुर्सी का दाह संस्कार

भारत के सुप्रसिद्ध इतिहासकार स्व० गो० स० (नानासाहेब) सरदेसाई की अन्तिम इच्छा के अनुसार उनकी आराम कुर्सी का भी दाह-संस्कार कर दिया गया। लेखक ने यह इच्छा व्यक्त की थी कि उनकी प्रिय कुर्सी, जिस पर बैठ कर उन्होंने सत्तर वर्ष बिताये हैं, उनके शरीर के साथ ही जला दी जाय। (हि० 9.12)

बिहार

डा० अलतेकर का निधन

जायसवाल रिसर्च इंस्टीट्यूट के डाइरेक्टर श्री अनंत सदाशिव अलतेकर का पटना के मैडिकल कालेज के अस्पताल में 20 नवम्बर को देहावसान हो गया, उनकी आयु 62 वर्ष की थी। जायसवाल संस्था में आने से पहले वह कई वर्ष तक पटना विश्वविद्यालय में प्राचीन भारतीय इतिहास और संस्कृति के प्रोफेसर रह चुके थे।

डा० अलतेकर के प्रति सम्मान प्रकट करने के लिये पटना विश्वविद्यालय से सम्बन्धित सभी शिक्षा संस्थायें एक दिन के लिये बंद रहीं। (हि० टा० 26.11)

नालन्दा में कालिदास कालीन चित्र

पटना के आयकत श्री एस० बी० सोहनी ने बिहार युवक होस्टल संघ की एक बैठक में बताया कि नालन्दा के एक वैष्णव मन्दिर में उन्होंने कुछ ऐसे पत्थर देखे हैं, जिनमें कालिदास की पुस्तकों के दृश्य अंकित हैं। उन्होंने कहा है कि ये चित्र छठी शताब्दी के जान पड़ते हैं और इनमें शकुन्तला और पंचतंत्र आदि के कुछ दृश्यों का मनोहर चित्रण किया गया है। बैठक की अध्यक्षता बिहार विश्वविद्यालय के उपकुलपति डा० दुखनराम ने की। उन्होंने नालन्दा में एक विश्वविद्यालय स्थापित करने का सुझाव भी दिया। (हि० 7.12)

विद्यापति के साहित्य का संग्रह और प्रचार

विद्यापति 15वीं शताब्दी में मिथिला के महान् कवि, दार्शनिक और इतिहासज्ञ माने जाते हैं। उनकी अधिकांश रचनाओं में राधा-कृष्ण और गौरीशंकर को संबोधित किया गया है। बिहार विद्यापति-परिषद् उनकी रचनाओं के संग्रह और प्रचार के लिये सतत प्रयास कर रही है और बिहार सरकार की राष्ट्रभाषा परिषद् भी उनकी रचनाओं का संग्रह प्रकाशित करने के लिये योजना बना रही है। (हि० 21.11)

पांडलिपियों की प्रदर्शनी

उर्दू रिसर्च इंस्टीट्यूट लाइब्रेरी पटना के तत्वावधान में 3 दिसम्बर 1959 को फारसी भाषा की लगभग एक हजार पांडुलिपियों की प्रदर्शनी का आयोजन किया गया। यह प्रदर्शनी बिहार में अपने ढंग की अनूठी है। प्राचीन पांडुलिपि की सुन्दर एवं आकर्षक लिखावट को देख कर दांतों तले अंगुली दबानी पड़ती है। बहुत सी पांडुलिपियां ऐसी प्रतीत होती हैं, मानों वे कल ही लिखी गई हों। उनमें बहुत सी हिन्दी कवितायें हैं, जो फारसी लिपि में लिखी गयी हैं। ये पांडुलिपियां इमाद, मीर अली, रशीद देहलवी, शाहजहां, भिर्जा गुलगनी, खुरशीद अली व जवाहरमल आदि प्रसिद्ध लेखकों एवं कवियों की हैं। (न० टा० 4.12)

मूर्तियों की चोरी

गया में 8 दिसम्बर को पुलिस ने एक लड़के को चौक के निकट एक मंदिर से लगभग तीन सेर वजन की मूर्ति चुरा कर भागते समय गिरफ्तार किया। (न० टा० 9.12)

मद्रास

लेखक-सम्मेलन

देश की विभिन्न प्रादेशिक भाषाओं के साहित्य की प्रगति पर विचार विमर्श के लिये देश भर से दो सौ से अधिक लेखक मद्रास में एकत्र हुए।

17 दिसम्बर को पांच दिवसीय अ० भा० लेखक सम्मेलन का उद्घाटन करते हुए डा० सी० पी० रामस्वामी अय्यर ने कहा कि आजकल भारतीय लेखकों में प्रवृत्ति पश्चिमी विचारधारा अपनाने की हो गई है। साहित्य की प्रगति पर प्रकाश डालते हुए उन्होंने कहा कि संतोष की बात है कि भारतीय लेखकों ने धर्म, सच्चाई और सहिष्णुता की विचारधाराओं को कायम रखा है। (न० भा० 19.12)

नाटक सम्बन्धी गोष्ठी

मद्रास राज्य के संगीत नाटक संगम ने अपनी पहली नाटक सम्बन्धी गोष्ठी 4 अक्टूबर, 1959 को आयोजित की। चर्चा चार घंटे तक चली। श्री टी० के० षण्मुखम् ने नाटक की सामान्य समस्याओं की चर्चा की। बारह वक्ताओं ने गोष्ठी में भाग लिया (हिन्दू 8 10)

मध्य प्रदेश

कालिदास जयन्ती

नवम्बर मास में मध्य प्रदेश के उज्जैन नगर में कालिदास जयन्ती समारोह बड़े उत्साहपूर्वक मनाया गया। 12 नवम्बर को कालिदास

compiled and created by Bhartesh Mishra

वार्षिक समारोह का उद्घाटन करते हुए प्रधान मंत्री श्री जवाहरलाल नेहरू ने महाकवि कालिदास को श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए कहा, "कालिदास विश्व के महाकवि हैं और इसमें मुझे तनिक सन्देह नहीं कि उनकी भाषा में चुस्ती और गठन है। कवियों में कोई उनका मुकाबला नहीं कर सकता।" इसके आगे उन्होंने कालिदास के मोहक साहित्य की चर्चा करते हुए बताया कि जर्मन कवि गेटे कालिदास से प्रभावित था। कालिदास के साहित्य के अनुवाद पर उन्होंने प्रकाश डालते हुए कहा कि कालिदास के अनुवादों में फर्क नहीं मालूम होता।

इस अवसर पर मध्य प्रदेश कला परिषद् द्वारा महाकवि कालिदास की अमर कृति 'शाकुन्तल' के आधार पर जो चित्र प्रदर्शनी आयोजित की गई थी, उसका पुरस्कार वितरण श्री नेहरू के द्वारा सम्पन्न हुआ। मध्य प्रदेश के शिक्षा मंत्री डा० शंकर दयाल शर्मा ने यह आशा करते हुए कहा कि कालिदास का समारोह उज्जैन में उसी प्रकार प्रति वर्ष मनाया जाता रहेगा, जिस प्रकार इंग्लैंड में शेक्सपियर का समारोह मनाया जाता है। (हि० 12.11)

मंदिर से प्राचीन मूर्तियों की चोरी

बताया जाता है कि मध्य प्रदेश के विभिन्न संग्रहालयों से मूर्तियां और अन्य वस्तुएं बहुत बड़ी संख्या में चोरी चली गई हैं। दिल्ली पुलिस ने मध्य प्रदेश से चोरी और निर्यात की गई वस्तुओं को जब्त किया है। कुछ वस्तुएं आगरा में पकड़ी गई हैं। मध्यप्रदेश सरकार ने आदेश दिए हैं कि प्राचीन मूर्तियों के चोरी जाने के सम्बन्ध में कार्यवाही की जाय। (हि० 2.12)

मैसूर

बंगलौर में राष्ट्रीय रंगशाला

मुख्य मंत्री श्री बी० डी० जट्टी ने बताया कि बंगलौर में अगले दो साल के अन्दर ही एक सुसज्जित राष्ट्रीय रंगशाला बन जायेगी। इसलिये केन्द्रीय सरकार ने लगभग दो लाख रुपये का अनुदान दिया है। (ड० हे० 20.10)

भारत की सांस्कृतिक एकता

अ० भा० बंगला साहित्य सम्मेलन का बंगलौर में 25 दिसंबर को उद्घाटन करते हुए गांधी स्मारक निधि के प्रधान डा० रा० रं० दिवाकर ने कहा कि यदि सांस्कृतिक एकता और राष्ट्रीय अनुशासन को शिक्षा का अंग न बनाया गया तो देश में यूरोपीयता की हवा चल जाने का खतरा है। (हि० 28.12)

समाज के पुनर्निर्माण के लिये अथक प्रयत्न आवश्यक

कर्नाटक विश्वविद्यालय में दीक्षान्त भाषण देते हुए राष्ट्रपति डा० राजेन्द्र प्रसाद ने कहा कि संस्कृति उस जीवन निधि का नाम है जो अतीत की पीढ़ियों का वर्तमान पीढ़ियों से सम्बन्ध जोड़ती है। उन्होंने बताया कि शक्ति के जिस स्रोत ने राष्ट्र को जीवित रखा है और समय के कठोर प्रहारों के बावजूद समाज को विच्छिन्न होने से बचाया है, वह स्रोत अभी ज्यों का त्यों है। परन्तु उर्वरा भूमि से कम फसल प्राप्त करने पर कौन प्रसन्न होगा? इसी प्रकार हमारी समृद्ध संस्कृति का भी हमारी आज की गरीबी और कष्टों से मेल नहीं बैठता।

स्नातक बनकर जाने वाले छात्रों को सम्बोधित करते हुए उन्होंने कहा कि आपने जो कुछ शिक्षा या संस्कृति हासिल की है, उसे समाज तक पहुंचाइये। आशा है कि आप लोग अपने को भारत की स्वतंत्रता, एकता और प्रतिष्ठा का दृढ़ रक्षक सिद्ध करेंगे, क्योंकि समाज के निर्माण के लिये अथक परि... की आवश्यकता है (हि० 4.11)

राजस्थान

कठपुतली और कच्छी घोड़ी नृ... कलायें

भारतीय लोक कला म... की ओर से आयोजित पांच दिवसी... कठपुतली और कच्छी घोड़ी नृ... समारोह में नवम्बर के दूसरे सप्ता... में राजस्थान के मुख्य मंत्री श्री सुखाडिया ने कहा कि आप... पुरानी लोक कलाओं का सुधा... और विकास करना जरू... है, परन्तु उनमें ऐसे परिवर्त... न किये जाएं, जिनसे उनकी ले... कला ही नष्ट हो जाये।

इससे पूर्व केन्द्रीय मंत्री प्रो० हुमायून् कबिर ने मनुष्य जीवन में मनोरंजन की आवश्यकता और महत्व पर बल दिया और कहा कि सिनेमा आदि जैसे मनोरंजन के साधन तो अभी बने हैं, परन्तु कठपुतलियों और कच्छी घोड़ियों के नृत्य तो मनोरंजन के बहुत पुराने साधन हैं और पुराने युग में इन्होंने काफी उन्नति की थी। उन्होंने कहा कि ये मनोरंजन के सस्ते और सादे साधन हैं, जिनमें अधिक दौलत की जरूरत नहीं पड़ती।

प्रो० कबिर ने भारतीय लोक कला मंडल को सहायता के तौर पर पांच हजार रुपये देने की घोषणा की। इसमें एक हजार का पुरस्कार समारोह के सबसे अच्छे कठपुतली प्रदर्शन के लिये और एक हजार रुपये का एक और पुरस्कार सबसे अच्छी 'वेरायटी आइट्म' के लिये दिया जाएगा। (हि० 18.11)

वैदेशिक समाचार

यूनेस्को

रवीन्द्र शताब्द समारोह

यूनेस्को के सांस्कृतिक कार्य-कलाप के डाइरेक्टर डा० आर०

compiled and created by Bhartesh Mishra

सैलाट ने एक भट में प्रो० हुमायूं कबिर से कहा कि उक्त समारोह के सिलसिले में यूनेस्को टैगोर की कृतियों का एक संग्रह निकालना चाहता है, एक टैगोर सप्ताह आयोजित करना चाहता है, यूनेस्को कोरियर का एक विशेषांक निकालना चाहता है और 1961 की सर्दियों में एक साहित्यिक गोष्ठी आयोजित करना चाहता है। (टा० ई० 21.10)

आस्ट्रिया

बारहवां पुस्तक सप्ताह

राष्ट्रव्यापी आधार पर बारहवां आस्ट्रियायी पुस्तक सप्ताह 7 से 15 दिसम्बर, 59 तक मनाया जा रहा है। तीस पुस्तक प्रदर्शनियां आयोजित की जा रही हैं। पुस्तक प्रकाशन की दृष्टि से आस्ट्रिया का स्थान दुनियां में छठा है (न्यू० आ० 10.11)

इजराइल

फिलहारमोनिक वाद्यवृन्द

इजराइल का फिलहारमोनिक वाद्यवृन्द अगले साल भारत और जापान में अपने प्रदर्शन दिखायेगा। (न्यू इ० 1.11)

उत्तरी अफ्रीका

संसार की एक प्राचीन सभ्यता की खोज

पता चला है कि उत्तरी अफ्रीका की फ्रेंच संस्था के प्राग-ऐतिहासिक पुरातत्व विभाग के मुखिया ने प्राचीन सभ्यता के कुछ ऐसे चिन्ह खोजे हैं, जो शायद संसार की सबसे प्राचीन सभ्यताओं में से एक है। पुरातत्व वेत्ताओं के अनुसार उस युग के बहुत प्राचीन होने का अनुमान है। दल के मुखिया का उद्देश्य यह जानना भी है कि यातायात के साधन रेगिस्तानी इलाके में कैसा काम देते हैं। दल के पास चौदह गाड़ियों के अतिरिक्त एक छोटा वायुयान और एक हेलीकोप्टर भी है (हि० 23.11)

चीन

हिन्दी व्याकरण में संशोधन

चीनियों ने हिन्दी के व्याकरण को अनुपयुक्त एवं पुराना बताते हुए उसमें संशोधन एवं परिवर्द्धन करने का निश्चय किया है। उनका कहना है कि हिन्दी के व्याकरण आचार्य कामता प्रसाद गुरु के व्याकरण के आधार पर बनाए गए हैं। ये आज की परिस्थितियों एवं आवश्यकताओं के लिये उपयुक्त नहीं हैं। (न० टा० 19.12)

जापान

जापानी कलाकार को 'क्रिटिक्स' पुरस्कार

इस साल का उक्त पुरस्कार जापानी चित्रकार योशीरिगो सैटो को दिया गया है। पुरस्कार पाने वाली कृति का रंगीन उद्धरण यूनेस्को की सहायता से किया जा रहा है, जिसे दुनियां के देशों में वितरित किया जायेगा। (यूनेस्को)

नीदरलैंड

साहित्य का पुरस्कार

साहित्य का पुरस्कार इस वर्ष कवि ए० रोलहोल्स्ट को दिया गया है। यह पुरस्कार तीन साल में एक बार क्रमशः बेल्जियम और डच लेखक को दिया जाता है (दि नी० 12.58)

पश्चिमी जर्मनी

अन्तर्राष्टीय संगीत स्पर्धा

म्यूनिख में आयोजित अन्तर्राष्ट्रीय संगीत स्पर्धा में चौबीस देशों ने भाग लिया। दस दिन के कठोर परीक्षण के बाद पुरस्कार दिये गये। (ज० न्यू० 18.12)

कथाकली नृत्य का प्रदर्शन

कथाकली नर्तकों के एक दल ने बोन के पास एक कार्यक्रम पेश किया। जर्मन वासियों ने प्रदर्शन में बड़ी दिलचस्पी ली। (ज० न्यू० 31.12)

पाकिस्तान

पेशावर के पास बौद्ध मठ

करांची में 20 नवम्बर को प्रकाशित एक समाचार के अनुसार एक जापानी पुरातत्व टुकड़ी ने पेशावर से अड़तीस मील दूर एक बौद्ध मठ की खुदाई की। यह मठ 1000 फीट लम्बी और 600 फीट चौड़े क्षेत्र में है। बताया जाता है कि इस स्थान पर भगवान् बौद्ध ने अनावृष्टि पीड़ित कलिंगवासियों को एक सफेद हाथी भेंट किया था, जिसके वहां पहुंचते ही वृष्टि शुरू हो गई।

खुदाई में अहाते की दीवारों, बग़ल के कमरों, रास्तों, दीवाल-चित्रों, मिट्टी के बर्तनों, चूड़ियों और दीपकों का पता चला है। टुकड़ी के नेता के अनुसार इस स्थल पर तीन पर्तें मिली हैं, जो तीन अलग युगों की हैं। सबसे ऊपर की पर्त कुषाण युग की बताई जाती है। (डान, कराची)

फिलीपीन्स

विशाल मूर्ति

क्वेज़ोन नगर के सिनेमा कालेज के नये भवन के निर्माण के सिलसिले में वहां के संत कैथरीन की एक विशाल संगमरमर की मूर्ति बनाई गई है, जो आठ मीटर लम्बी और ढाई मीटर चौड़ी है। यह कुमारी मैमुयाक ने बनाई है। (क०न्यू०ए० 10.59)

बर्मा

प्राचीन शिवमंदिर

किंवदन्ती है कि पाण्डवों ने अपने निर्वासन काल में बर्मा के जंगल में एक सुन्दर चश्मे के पास एक पहाड़ी पर शिव मूर्ति स्थापित की थी। अंग्रेजों के जमाने में वहां रेलवे लाइन बिछाने के लिये जब मूर्ति पर कुल्हाड़ा

compiled and created by Bhartesh Mishra

चलाया गया, तो उसमें से खून बह निकला। इसलिये लाइन वहां से एक फर्लांग की दूरी पर बिछाई गई। वहां एक पुराना मन्दिर टूटी-फूटी हालत में था, जो कि बर्मा के उत्तरी शान राज्य में लाशियों से बारह मील दूर शंखेश्वर शिव मन्दिर कहलाता है, लेकिन अब मन्दिर की विशाल इमारत बन गई है। हिन्दू, शान और बर्मी सभी इस मन्दिर में मूर्ति की पूजा करते हैं। (हि० 17.11)

ब्रिटेन

कालरिज के पत्रों का संग्रह

कालरिज के पत्रों की तीसरी और चौथी जिल्दें हाल में आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस द्वारा अर्ल लैंज़ली ग्रिग्ज़ के सम्पादन में प्रकाशित की गई हैं। इन पत्रों का समय फरवरी, 1807 से दिसम्बर, 1911 तक है, जो कालरिज के जीवन का बड़े उथल-पुथल का समय था। भूमिका में ग्रिग्ज़ ने कहा है कि पत्र-लेखन कालरिज के लिये आत्मअभिव्यक्ति का एक साधन था और उनके पत्रों में कवित्व की अद्भुत झांकी देखने को मिलती है। (दि आर्ट्स् एण्ड एजुकेशन, ब्रि० कौं०)

छः लाख वर्ष पुराना खोपड़ा

लन्दन में वैज्ञानिकों की एक सभा में नैरोबी के एक संग्रहालय के अध्यक्ष और प्रसिद्ध मानव विज्ञान विशारद डा० लीके ने कहा कि टांगानिका में हाल में मनुष्य का छः लाख वर्ष पुराना जो खोपड़ा मिला है, वह मनुष्य के विकास की उस कड़ी की पूर्ति करेगा, जिसके बारे में लोग अभी तक अन्धकार में थे। (संडे स्टे० 25.10)

लेबनान

कापीराइट कन्वेन्शन में शामिल

लेबनान उक्त कन्वेन्शन में शामिल हो गया है। उसे मिला कर अब तक बत्तीस देश इसमें शामिल हो चुके हैं। (यूनेस्को)

वियतनाम

रोम का ग्रांडप्रिक्स पुरस्कार

स्थापत्य संबंधी उक्त पुरस्कार 32 वर्ष के वियतनामी कलाकार न्गो वियत थू को दिया गया है। यह पुरस्कार पाने वाले वह पहले ही वियतनामी कलाकार हैं। उन्होंने दो योजनाएं प्रस्तुत की थीं। (का० न्यू० ए० 11.59

संयुक्त अरब गणराज्य (मिस्र)

प्राचीन वस्तुओं की रक्षा

मिस्र की प्राचीन वस्तुओं को आस्वान बांध के बन जाने पर डूबने से बचाने के लिये यूनेस्को कुछ उपायों पर विचार करने जा रहा है। खासकर अबू सिम्बैल और फिलाये टापू के मन्दिरों की रक्षा के लिये ये प्रयत्न किये जा रहे हैं। यह सम्भावना है कि यूनेस्को सदस्य देशों से सहायता देने के लिये अनुरोध करेगा। (स्टे० 29.11)

भारतीय कलाकार की चित्रकारी प्रदर्शित

भारतीय, मिस्री और यूनानी चित्रकारियों की एक प्रदर्शनी तारीख 3 नवम्बर को काहिरा में उद्घाटित हुई। यह चित्रकारी भारतीय दूतावास के श्री आत्माराम की पत्नी श्रीमती सुशीला की थी, जिसमें मिस्री और यूनानी जीवन का एक विशेष अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। (हि० 5.11)

अमेरिका

एशिया हाउस

एशिया सोसाइटी और जापान सोसाइटी के अध्यक्ष श्री जोन डा० रोकफैलर (तृतीय) ने 15 दिसम्बर को बताया कि न्यूयार्क में एक जगमगाता हुआ नवीन एशिया हाउस जनता के लिये औपचारिक रूप से खोल दिया गया है। यह हाउस अ रिकिओं को एशियाई जीवन बारे में अधिक से अधिक त खोजने का मौका देगा, क्यों यह एशियाई कला के प्रद केन्द्र, और संस्कृति के अध्य केन्द्र एवं अनेक कार्यक्रमों केन्द्र के रूप में कार्य करेगा (हि० 18.11)

सोवियत रूस

पंत की कविताओं का रूसी अनुव

'तास' के समाचार के अनुस हिन्दी कवि सुमित्रानन्दन पंत क कविताओं का एक संग्रह मास्क से प्रकाशित किया गया है। लगभ पचास कविताओं का रू अनुवाद भी किया गया है। भूमिक में येवगेनी चेलीशेव ने, भारतीय साहित्य के विशेषज्ञ ह कहा है कि आधुनिक हिन्दी कविता में पंत की रचनाओं से एक नये युग का सूत्रपात हुआ है। मास्को के विदेशीय साहित्य प्रकाशनगृह ने भारतीय नवोदित कहानीकार कुल भूषण की कहानियों का एक संग्रह भी प्रकाशित किया है। (हि० स्टे० 30.10)

संस्कृत नाटक का अनुवाद

रूस में भारत की प्राचीन पुस्तकों के अनुवाद का जो कार्यक्रम चल रहा है, उसमें "मुद्रा राक्षस" का अनुवाद हाल ही में शामिल किया गया है। (न० भा० 7.12)

बाकू में भारतीय मंदिर

प्रधान मंत्री श्री नेहरू ने श्री बी० सी० बरुआ के प्रश्न के उत्तर में लोक-सभा में कहा कि बाकू (रूस) में एक पुराना मंदिर पाये जाने का समाचार मिला है। इस पर संस्कृत, गुरुमुखी और फारसी में कुछ लिखा है। इसका नाम आतिश गाह बताया जाता है। इस विषय पर मदाम आहुरबेली का लेख भी है, जो सभा-पटल पर रखा है। (हि० 17.11)

compiled and created by Bhartesh Mishra

लोक मंच

संस्कृति की शुरू से ही यह नीति रही है कि वह सांस्कृतिक विचारों के वहन का एक माध्यम बने। साथ ही उसकी आकांक्षा भारतीय संस्कृति के विभिन्न विवादग्रस्त पहलुओं के बारे में एक मंच बनने की भी रही है। संस्कृति में अब तक उठाए गए प्रश्नों के बारे में हम पाठकों के कुछ पत्र नीचे दे रहे हैं। इन पत्रों के उत्तर में या स्वतंत्र रूप से अन्य समस्याओं को उठाने वाले पत्रों का हम स्वागत करेंगे। इस प्रकार के पत्रों को बढ़ावा देने के लिए हमने उत्कृष्ट पत्रों को पुरस्कृत करने का भी विचार किया है। पत्रों में प्रकाशित विचार लेखकों के अपने विचार होते हैं, संस्कृति के नहीं। इस अंक निम्न पत्र प्रेषकों को पुरस्कार दिया जा रहा है : आत्रेय, जगदीश, क ख ग'।

—सम्पादक

: एक :

भारतीय रागों का वृन्दवादन

प्रिय संपादक जी,

मैं श्री नारायण मेनन से सहमत हूं कि जिस राग की समस्त सुन्दरता और सम्पूर्णता एक ही बीणा द्वारा अभिव्यक्त हो सके, उसे वाद्यवृन्द द्वारा प्रस्तुत करने में कोई लाभ नहीं। यह ठीक है कि हमें अपने प्राचीन संगीत को पुरानी परिपाटी और पुराने संकुचित परिवेश में ही सीमित नहीं रखना चाहिये। मैं यह भी मानती हूं कि इस विषय में अनुसंधान की पूरी गुंजाइश है और एक चतुर रचनाकार किसी भी प्रकार के विशुद्ध राग संगीत को एकदम भ्रष्ट किये बिना उसे वृन्दवादन का रूप दे सकता है। परन्तु भारतीय संगीत का सौंदर्य इसी में है कि वह श्रोता के अन्तस्तल की भावनाओं को प्रभावित करता है। यह बात रौक एंड रौल जैसे संगीत में नहीं मिल सकती। यह बात अलग है कि दोनों ही रूप श्रोता पर अपना प्रभाव डालते हैं, पर दोनों में भेद है।

इसलिये मेरे विचार से भारतीय रागों के वृन्दवादक को इन मौलिक बातों को ध्यान में रखना होगा। मैं संस्कृति के पहले अंक में संगीत-विषयक लेख में प्रतिपादित इस विचार से सहमत हूं कि सांस्कृतिक दृष्टि से संगीत के बारे में पूर्व और पश्चिम का मेल संभव नहीं है। इसलिये अन्ध-अनुकरण के रूप में हमें पश्चिमी तानों को भारतीय रागों में ढालने से बचना चाहिये।

आपकी—
अनामिका

: दो :

ललित कलायें और पाठ्यक्रम

प्रिय संपादक जी,

मैं मानता हूं कि ललित कलाओं का सामान्य ज्ञान सभी स्नातकों के लिये अनिवार्य कर दिया जाना चाहिये। परन्तु यह जरूरी नहीं कि प्रत्येक छात्र से किसी ललित कला में निष्णात होने की उम्मीद की जाये। उन्हें देश की और जहां तक हो सके विदेश की ललित कलाओं के इतिहास और विकास के बारे में सामान्य जानकारी होनी चाहिये।

आपका—
दिनेश
कानपुर

: तीन :

साहित्यकारों का सम्मान

प्रिय संपादक जी,

साहित्यकारों को मदद दी जाये और उनका सम्मान किया जाये, इस बारे में दो मत नहीं हो सकते। किन्तु दूसरी 'अति' भी खतरनाक है। आखिर साहित्यकार को सम्मान की इतनी भूख क्यों ? तुलसी ने स्वान्तः सुखाय लिखा और आज वे अमर हैं। कुम्भनदास ने तो यहां तक कहा— 'संतन को कहा सीकरी सों काम'। इसलिये राजनीति की भांति साहित्य के क्षेत्र में प्रतिष्ठा की हविस हमारे समाज के लिये हितकर न होगी।

compiled and created by Bhartesh Mishra

हमारे साहित्यकार उससे जितना दूर रह सकें, वही समाज के लिये श्रेयस्कर है ।

आपका—

जगदीश
नई दिल्ली

: चार :

प्रिय संपादक जी,

हमारे साहित्यकारों की आज जो दयनीय दशा है, उनके लिये कुछ करने की दिशा में 'संस्कृति' के पौष अंक में 'विचारक' ने जो प्रश्न उठाया है, वह सर्वथा समयोचित है । हमारे समाज को अपने साहित्यकारों के लिये जितना कुछ करना चाहिये, हम उसका एक हिस्सा भी नहीं कर पा रहे हैं ।

परन्तु इस समस्या का समुचित समाधान तब तक न हो सकेगा, जब तक साहित्यकारों को उनके श्रम का समुचित लाभ मिलने की व्यवस्था न कर दी जाये । हमारे देश में चौदह भाषायें हैं । कुछ ऐसी व्यवस्था होनी चाहिये कि एक अच्छे लेखक की अच्छी कृति सभी प्रादेशिक भाषाओं में एक साथ प्रकाशित हो और उसके पाठकों की संख्या बढ़ जाये ।

आपका—
आत्रेय
अम्बाला

: पांच :

रामलीला और रासलीला

प्रिय सम्पादक जी,

'संस्कृति' का 'बिन्दु. . . . बिन्दु. . . . विचार' स्तंभ मुझे बहुत रोचक लगा । 'विचारक' ने पिछले अंक में रामलीला और रासलीला के परिष्कार की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करके बड़ा महत्वपूर्ण काम किया है । इन दोनों कला-रूपों में सुधार सभी दृष्टियों से आवश्यक है । आशा है, हमारे देश की संस्कृति के विधाताओं का ध्यान इस ओर जरूर खिचेगा और जल्दी ही संगठित रूप में कुछ किया जावेगा ।

आपका—
राधेश्याम
हरदोई

: छ :

प्रिय संपादक जी,

रामलीला के लोक-नाटक में यदि कुछ जरूरी सुधार कर दिये जायें, तो हमारी संस्कृति की अभिव्यक्ति का यह एक उपयुक्त माध्यम सिद्ध हो सकता है । यही बात रासलीला के बारे में भी कही जा सकती है । धर्म का प्रश्न इसमें आड़े न आना चाहिये और सरकार या राष्ट्रीय अकादेमियों द्वारा इस बारे में कुछ किया जाना चाहिये ।

आपका—
क ख ग
दिल्ली

'संस्कृति' पत्रिका के दिसम्बर, 59 जनवरी, 60 अंक में लोक मंच स्तम्भ के अन्तर्गत कला में अश्लीलता की समस्या पर पाठकों के विचार दिये गये हैं । लोक मंच जैसे स्तम्भों से निश्चय ही पाठकों में कला और संस्कृति के प्रति स्वस्थ अभिरुचि के विकास में सहायता मिलती है ।

—आज, 17 अप्रैल, 60

compiled and created by Bhartesh Mishra

समीक्षा

विश्वसाहित्य की रूपरेखा : लेखक—श्री भगवत शरण उपाध्याय; प्रकाशक—राजपाल एंड संस; कश्मीरी गेट, दिल्ली।

'विश्वसाहित्य की रूपरेखा' भूमंडल के विख्यात देशों के समृद्ध साहित्यों की एक संक्षिप्त-सी परिक्रमा है। इस परिक्रमा के सर्वांग दर्शन का सुयोग न होने पर भी सतही आभास के लिये पर्याप्त अवकाश निकल आता है। विश्व मंडल के मनीषी विद्वानों ने अपनी-अपनी भाषाओं में, साहित्य के क्षेत्र में जो प्रयत्न किये उन्हें एक ही स्थल पर देखने का यह प्रयास एक ओर लेखक के अध्यवसाय का निदर्शन है तो दूसरी ओर साहित्य की विविधता और व्यापकता का भी हमें परिचय कराता है।

विश्व की 28 भाषाओं के साहित्य का इतिवृत्त प्रस्तुत करते समय लेखक ने इस बात का ध्यान रखा है कि हिन्दी का लेखक, पाठक और सामान्य विद्यार्थी इस विवरण से लाभ उठाकर अपनी लेखनी को सबल बना सके। यह प्रयत्न स्तुत्य है, इसका परिणाम भी लाभप्रद होगा। सामान्य स्तर के लेखक-पाठक को जो जानना चाहिये, वह बहुत कुछ मात्रा में मिलेगा भी, किन्तु इस प्रयत्न में पूर्णता की कल्पना करना संगत न होगा। कदाचित् लेखक के सामने भी ऐसी कोई कल्पना नहीं रही है जो पूर्णता से किसी रूप में भी तादात्म्य रखती हो। पुस्तक प्रणयन की आवश्यकता एक विशिष्ट उद्देश्य को सामने रखकर ही हुई—"हिन्दी का लेखक प्रायः संसार के सारे साहित्यों के लेखकों में कम पढ़ा-लिखा है। लगा कि इस प्रकार का साहित्य प्रस्तुत कर दिया जाय, जिससे दूसरे साहित्यों का ज्ञान हमारे सक्रिय लेखकों को हो और वे जानें कि हमें और बहुत जानना है और कि हमारे समानधर्मी विदेशी साहित्यकारों ने किन-किन परिस्थितियों में कैसी-कैसी कृतियों का सृजन किया है।" अर्थात् अर्ध शिक्षित हिन्दी लेखक को शिक्षित बनाने या अन्य साहित्यों से परिचित कराने का ही यह मात्र उपक्रम है। कहना न होगा कि इस उद्देश्य की पूर्ति में प्रस्तुत ग्रन्थ अवश्य सहायक होगा।

लेखक महोदय ने विश्वसाहित्य की 'रूपरेखा' ही प्रस्तुत की है—रूपरेखा का भी अपना महत्व होता है। दरअसल रूपरेखा का ही आकार-प्रकार की स्रष्टा है। साढ़े-पांच सौ पृष्ठों के परिमित कलेवर में रूपरेखा के लिए ही अवकाश था—विस्तार अपेक्षित होता तो एक ही साहित्य इतने कलेवर में आना सम्भव न होता। 'रूपरेखा' की विशेषता है कि उसमें सहस्राब्दियों का साहित्य मूर्तिमन्त होकर अपनी विशिष्ट प्रवृत्तियों, कृतियों और कृतिकारों की क्रमिक गाथा का समाहार कर सका है। प्रकाशकीय परिचय में ग्रन्थ की खोजपूर्ण और साहित्यों का सांगोपांग दिग्दर्शन कराने वाला ग्रंथ कहा गया है जो अत्युक्तिपूर्ण है—रूपरेखा को सांगोपांग कहना स्वयं वदतो व्याघात दोष है, एक विरोधाभास है, किन्तु आवश्यक का ग्रहण और अनावश्यक का त्याग इस ग्रंथ में हुआ है। और यही रूपरेखा की शैली भी है।

अट्ठाईस समृद्ध भाषाओं के साहित्यों का एकत्र समाहार सचमुच एक जटिल कार्य है। इस दुरूह कार्य को सुगम बनाने की प्रक्रिया में लेखक को सफलता मिली है, इसमें भी सन्देह नहीं है। विश्व की सभी समृद्ध भाषाओं में 'ज्ञान कोष' या 'एनसाइक्लोपीडिया' बनाने की प्रवृत्ति है। अंग्रेजी की एनसाइक्लोपीडिया में बड़े विस्तार से इनमें से अनेक भाषाओं के साहित्य का इतिवृत्त प्रस्तुत किया गया है, किन्तु उस विशाल कोष ग्रंथ में से उपयुक्त सामग्री चयन की योग्यता प्रत्येक लेखक में नहीं होती, विश्वसाहित्य की रूपरेखा प्रस्तुत करते समय लेखक ने इस संकलन क्षमता का अच्छा परिचय दिया है।

हिन्दी के लेखक और पाठक अंग्रेजी साहित्य से अपेक्षाकृत अधिक परिचित हैं। प्राचीन ऐंग्लो सैक्सन साहित्य का पठन-पाठन तो अपेक्षाकृत कम होता है, किन्तु शेक्सपियर के काल से लेकर अद्यतन काल तक के साहित्य के अध्ययन की प्रवृत्ति प्रायः सामान्य है। लेखक ने अंग्रेजी काव्य, नाटक, उपन्यास, गद्य आदि विद्याओं का पृथक्-पृथक् विवरण देकर अपने अध्ययन को उपयोगी बना दिया है। साहित्य शब्द की सीमा-मर्यादा में लेखक ने ललित साहित्य को ही लिया है, अध्यात्म-दर्शन, धर्म आदि को छोड़ दिया है, अध्यात्म और दर्शन साहित्य की पृथक् रूपरेखा प्रस्तुत की जा सकती है। अंग्रेजी साहित्य के विवरण में सन् 1930 के बाद के साहित्य की प्रवृत्तियों पर लेखक ने गंभीरता से विचार नहीं किया। अरबी साहित्य के प्रकरण में लेखक ने भारतीय पंडितों के ज्योतिष ज्ञान का वर्णन करते हुए बगदाद में 700 ई० में हिन्दू गणित और ज्योतिष शास्त्र के ग्रंथ के अनुवाद का उल्लेख किया है। अरबी के अंक नाम 'हिन्दसा' की सार्थकता हिन्द से आने के कारण बताई गई है। भारतीय अंकमाला के अतिरिक्त पहलवी में 'पंचतंत्र' के अनुवाद का भी वर्णन है। भारतवर्ष में अरबी साहित्य के सृजन का वर्णन भी विद्वान् लेखक ने किया है और गुजरात का इतिहास तथा पुर्तगालियों के साथ युद्ध का वर्णन इस भाषा में लिपिबद्ध हुआ।

अक्कादी साहित्य का विवरण हिन्दी के पाठक के लिए अत्यधिक उपयोगी है। सुमेरी साहित्य के प्राचीनतम ऐतिहासिक महाकाव्य 'गिल्गमेश' की रचना उसी जल प्लावन कथा पर हुई है जिस पर कामायनी की कथा आधृत है। इस कथा की समृद्धि इस बात की प्रमाण है कि सभी सभ्य देशों के साहित्य में इस कथा को बहुत ही महत्व प्राप्त हुआ था।

compiled and created by Bhartesh Mishra

इटेलियन साहित्य का उल्लेख करते हुए बीसवीं शती की चर्चा के संक्षेप का कारण समझ में नहीं आ सका। यदि वर्तमान युग पर लेखक कुछ और लिखते तो हिन्दी का पाठक अवश्य लाभान्वित होता।

चीनी साहित्य का उल्लेख समीचीन शैली से हुआ है। चीनी भाषा वर्णमाला के विस्तार और अक्षर रचना की जटिल प्रक्रिया के कारण दुर्बोध बन गई है। भारत का पड़ौसी देश होने पर भी चीनी भाषा और साहित्य की जानकारी भारत में बहुत कम है। चार-पांच सहस्र वर्ष पुराने चीनी साहित्य का लेखक ने जिस रूप में वर्णन किया है वह केवल उपयोगी ही नहीं वरन् रोचक भी है। चीनी जाति के हृद्गत भावों का संकेत करते हुए लेखक ने जो पद्य अनूदित किया है वह अनुपम है :—

'सुबह होती है तो मैं काम में खो जाता हूं,
सांझ होती है तो आराम से सो जाता हूं
खोदता हूं मैं कुआं प्यास बुझाने के लिए
खेत मैं जोतता हूं भूख मिटाने के लिए
राज सत्ता को भला मुझ से सरोकार है क्या।"

चीन के विषय में सामान्य धारणा है कि वह प्राचीनकाल में अफीमचियों का देश रहा है, उसमें ललित साहित्य की समृद्धि के लिए इतनी जागरूकता नहीं रही होगी जैसी अन्य देशों में है, किन्तु इस ग्रंथ में चीनी साहित्य का अध्याय पढ़ने के उपरान्त इस धारणा में परिवर्तन करना पड़ता है।

जर्मन साहित्य के अध्ययन में वर्तमान युग की चर्चा संक्षेप में होने पर भी मार्मिक है। अभिव्यंजनावाद की चर्चा करते हुए लेखक ने तात्विक भेदों पर भी दृष्टि डाली है। फ्रेंच, फारसी, तुर्की, रूसी, स्पेनी साहित्यों का वर्णन भी अच्छे व्यापक धरातल पर हुआ है। संस्कृत साहित्य का विस्तार जानबूझ कर नहीं किया गया। उसकी विशेष आवश्यकता भी नहीं थी। हिन्दी के लेखक-पाठक को उसका पर्याप्त नहीं तो यत्किंचित् ज्ञान तो होता ही है।

ग्रंथ की पाद टिप्पणियों में विदेशी लेखकों के नाम अंग्रेजी भाषा में यथा स्थान दे दिये गये हैं जो उच्चारण तथा तिथि आदि जानने में सहायक होंगे। यदि नामानुक्रमणी भी दी जाती, तो बहुत अच्छा होता। इस प्रकार के ग्रंथ को संदर्भ ग्रंथ बनाने के लिए यह अनिवार्य है। पुस्तक का पारायण करने के बाद उसकी 'परिचयात्मक' विशेषता ही सबसे ऊपर उभरकर आती है। 'विवेचनात्मक' विशेषण उसे नहीं दिया जा सकता। किन्तु साहित्यों का परिचय पा लेना भी कुछ कम नहीं है। एक ही स्थान पर 28 साहित्यों का स्वरूप-ज्ञान बहुत बड़ी उपलब्धि है और यही इस ग्रंथ की सार्थकता है।

—डा० विजयेन्द्र स्नातक

मैथिलीशरण गुप्त : कवि और भारतीय संस्कृति के आख्याता : लेखक—डा० उमाकान्त; प्रकाशक—हिन्दी अनुसंधान परिषद्, दिल्ली विश्वविद्यालय के निमित्त नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली।

यह हिन्दी अनुसंधान परिषद् ग्रन्थ माला के अन्तर्गत प्रकाशित शोध-ग्रंथ है। इसमें गुप्त जी के समस्त काव्य-कृतित्व का पहली बार व्यापक वैज्ञानिक पद्धति से समीक्षात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। अब तक गुप्त जी के काव्य के सम्बन्ध में जो समीक्षा ग्रंथ उपलब्ध थे, वे बहुत कुछ परिचयात्मक और छात्रोपयोगी ही थे। इस प्रकार डा० उमाकान्त यह ग्रंथ एक बड़े अभाव की पूर्ति करता है।

ग्रंथ की योजना में ऐसी वैज्ञानिक संगति है कि विषय का समुचित उद्घाटन और निरूपण हो सका है। पूर्वार्द्ध में गुप्त जी के काव्य ग्रंथों का इतिहासक्रम में परिचय दिया गया है तथा दो शीर्षकों—भाव और कला पक्ष के अन्तर्गत काव्य के विविध गुणों भाव-श्री, प्रबन्ध योजना आख्यान कला, आख्यान और रस विधान भाषा और छन्द आदि का विवेचन प्रस्तुत किया गया है। उत्तरार्ध में भारतीय संस्कृति के मूल तत्व मूल्यों और परम्पराओं के उद्घाटन के बाद गुप्त जी के काव्य में उनकी अवतारणा और व्याख्याओं का विवेचन किया गया है।

गुप्त जी के कवित्व के मूल्यांकन के लिये भारतीय संस्कृति के आख्याता के रूप में उनका परिचय आवश्यक था, क्योंकि उनके कृतित्व का प्राण भारतीय संस्कृति ही है। वे अपने काव्य में सांस्कृतिक कथानकों और आख्यान द्वारा जो जीवन-मूल्य प्रतिष्ठित करते रहे हैं, उनके परिवेश में ही हम उनके काव्य गुणों का यथोचित आकलन कर सकते हैं। इस दृष्टिकोण के बिना केवल शास्त्रीय मानदण्डों के अनुसार उनके काव्य का जो मूल्यांकन किया जायेगा। वह अधूरा ही होगा।

किन्तु ग्रंथ के इस भाग में इस बात की संगति और सार्थकता समझ में नहीं आई कि लेखक ने भारतीय सांस्कृतिक तत्वों और परंपराओं की व्याख्या इतने विस्तार से क्यों की है। वांछित यह था कि भारतीय संस्कृति के मूल तत्वों का उल्लेख मात्र कर दिया जाता और विस्तारपूर्वक यह विवेचन किया जाता कि किस प्रकार गुप्त जी ने प्राचीन आख्यानों के माध्यम से उनकी अभिव्यक्ति अपने काव्य में की है। प्राचीन सांस्कृतिक जीवन के सजीव चित्रों के साथ-साथ यदि शोधकर्ता ने इस बात का भी यथाप्रसंग संकेत कर दिया होता कि कवि ने नये सांस्कृतिक संदर्भों में किस प्रकार इन चित्रों को प्रक्षेपित किया है और उनकी नयी व्याख्यायें दी हैं, तो अधिक अच्छा होता।

इधर पिछले कुछ वर्षों में आधुनिक साहित्यकारों, साहित्यिक धाराओं और प्रवृत्तियों के गवेषणात्मक अध्ययन के फलस्वरूप जिन ग्रंथों का प्रणयन हुआ है उनमें प्रस्तुत ग्रंथ का स्थान बहुत समादृत होगा।

—इन्दुजा अवस्थी

मछुआरे : मूल लेखक—तकषी शिवशंकर पिल्लै; अनुवादिका—श्रीमती भारतीय विद्यार्थी; प्रकाशक—साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली; मूल्य तीन रुपये पचास नये पैसे।

यह उपन्यास मलयालम उपन्यासकार तकषी शिवशंकर पिल्लै के 'चेम्मीन' का हिन्दी रूपान्तर है। उपन्यास में केरल तट के मल्लाहों और मछुआरों के जीवन का यथातथ्य चित्रण है। उपन्यास की नायिका करुत्तम्मा ने अपने बाल जीवन में अनजाने ही एक मछली के ठेकेदार मुसलमान युवक को अपना हृदय दे दिया था। आगे चलकर वही प्रेम उसके विवाहित जीवन में एक टीस ही नहीं एक बोझ-सा भी बनकर उस पर हावी रहा। यही निश्छल प्रेम प्रेमी-प्रेमिका दोनों के ही विनाश और अंत में जल-समाधि का कारण बना। करुत्तम्मा के पति की भी उसी दिन जलसमाधि हो गई, मानो इस अंधविश्वास की पुष्टि करने के लिये कि समुद्र की छाती

compiled and created by Bhartesh Mishra

पर खेलने वाले मछुआरों का जीवन सूत्र तट पर बैठी मल्लाहिनों के सतीत्व से बंधा रहता है ।

इस प्रकार करुत्तम्मा भी जहां एक ओर हार्डी की टैस या किसी दूसरी नायिका की भांति प्रकृति-पुत्री है, वहां वह भी उसी तरह परंपरागत अंधविश्वासों से पीड़ित है । पिछले जीवन का एक कृत्य—एक युवक से निश्छल प्रेम—उसके भी परवर्ती जीवन को भारांक्रांत किये रहता है और अन्त में उसके दुःखद अंत का कारण होता है । करुत्तम्मा और टैस सब बातों में समान न भी हों, पर हमें लगता है कि श्री पिल्लै पर हार्डी का बहुत प्रभाव है । वह भी हार्डी जैसा ही एक उत्कृष्ट त्रासदी-उपन्यास प्रस्तुत कर सके हैं । हार्डी या स्काट की भांति परिपार्श्व का चित्रण करने में भी उन्हें अनूठी सफलता मिली है । मछुआरों की आशा-आकांक्षाओं अंधविश्वासों और विपन्नता और स्वाभाविक ईर्ष्या आदि का चित्रण बहुत सुन्दर हुआ है ।

अनुवाद की भाषा प्रवाहपूर्ण और प्रांजल है । आवश्यकतानुसार पाद-टिप्पणियां देकर विशेष स्थानीय शब्दों पर प्रकाश डाल दिया गया है। यह बहुत उपयोगी है ।

प्रादेशिक भाषाओं के उत्कृष्ट साहित्य को अन्य भाषाओं में सुलभ कराने के लिये साहित्य अकादेमी द्वारा स्तुत्य कार्य किया जा रहा है। इस उपन्यास ने हिन्दी साहित्य को समृद्ध किया है।

छपाई-सफाई, गेट-अप आदि की दृष्टि से भी पुस्तक बहुत सुन्दर है। पृष्ट 27 से 29 तक के संवादों में कुछ गड़बड़ है । एक ही पात्र अच्चन को लगातार दो-दो बार बोलता दिखाया गया है । शायद प्रत्यालाप मूपन या किसी दूसरे पात्र के हैं और अच्चन गलती से बार-बार छप गया है। आशा है, अगले संस्करण में यह गलती सुधार ली जायेगी ।

---रा०

इंडियन लिट्रेचर: जिल्द 2 अंक 2; अप्रैल-सितम्बर, 1959; प्रकाशक—साहित्य अकादेमी; नई दिल्ली ।

———

इंडियन लिट्रेचर के इस अंक में भिन्न-भिन्न प्रकार की सामग्री है । कुछ बहुत बढ़िया है, कुछ अंशतः अच्छी है और कुछ के संकलन पर विशेष ध्यान नहीं दिया गया है । बहुत-सा अंश काफी जानकारी देने वाला है, विशेषतः विस्तृत 'समीक्षा' स्तंभ, जिसे सभी भारतीय और भारतीय साहित्य में दिलचस्पी रखने वाले लोग चाव से पढ़ेंगे । पर इस अंक में कुछ ऐसे लेख भी हैं, जिनका भारतीय साहित्य के विकास से कोई खास सम्बन्ध नहीं है। ब्रिटेन का आधुनिक साहित्यालोचन और थ्यूसीडाइडस जैसे लेखों का उल्लेख किया जा सकता है । इस समीक्षक के विचार से वाल्ट ह्विटमैन का लेख भी आखीर में उस लेखक पर भारत के प्रभाव का जिक्र किये बिना भी पूर्ण था । एक सम्पादकीय टिप्पणी में स्थिति साफ कर दी जानी चाहिये थी, जिससे इस अंक पर उठाई जाने वाली सामान्य टिप्पणियों से बचा जा सकता ।

भारतीय भाषाओं की कविताओं के जो अनुवाद अंग्रेजी में दिये गये हैं, उनमें भी अंग्रेजी की साहित्यिक शब्दावली का अपेक्षतया अज्ञान परिलक्षित होता है । यदि इसका उद्देश्य सिर्फ यही है कि प्रादेशिक भाषाओं से अनभिज्ञ पाठक को उन भाषाओं की कविताओं की झांकी देनी है, तो यह अच्छा उद्देश्य है और इसे प्रोत्साहित किया जाना चाहिये । पर सवाल यह है कि क्या ऐसा अनुवाद, जो एक विशुद्ध अनुवाद तो है, पर जिसका कोई साहित्यिक महत्व नहीं है, ऐसे उच्च स्तर वाले पत्र में छपना चाहिये । मलयालम, कन्नड़, हिन्दी और काश्मीरी की जो कवितायें पहले के कुछ पन्नों पर दी गई हैं, उनके बारे में मेरी अपनी धारणा यह है कि वे अंग्रेजी कविता के रूप में शामिल किये जाने लायक नहीं हैं । वह दिक्कत इस पत्रिका को आगे चलकर भी हो सकती है । सवाल यह है कि कविता का अनुवाद कविता में ही किया जाये या वह एक विशुद्ध अनुवाद मात्र हो ? अगर दूसरी बात की जाती है, तब भी इसकी काफी आलोचना की जायेगी ।

जैसा कहा जा चुका है, इस अंक की समीक्षायें काफी जानकारी देने वाली हैं, पर कुछ बहुत लंबी हैं । राजगोपालाचारी के 'चक्रवर्ती तिरुमगान' की के० एस० कृष्णन् ने जो समीक्षा की है, उसके बारे में यह बात खास तौर पर कही जा सकती है । समीक्षा का क्षेत्र सीमित है और वह चर्चाधीन पुस्तक का एक मूल्यांकन ही होती है । समीक्षक की साहित्य और लेखन-व्यवसाय सम्बन्धी धारणाओं को व्यक्त करने का माध्यम उसे नहीं बनाया जा सकता ।

इन सब कमियों को दबा लेने के लिये नीचे लिखी सामग्री बड़ी ही सराहनीय है : कृष्ण चन्द्र की एक विशद कहानी, त्यागराज सम्बन्धी नारायण मेनन का लेख और अंक के आखीर में भारतीय भाषाओं के नये ग्रंथों की एक सूची ।

—मुरियल वासी
(अनु० रा०)

सोर्सेज ऑफ इंडियन ट्रैडिशन : विलियम थ्योडर दे बेरी आदि द्वारा संकलित, प्राच्य सभ्यता की भूमिका-सभ्यता के अभिलेख-स्रोत और अध्ययन माला के अन्तर्गत न्यूयार्क में कोलम्बिया यूनिवर्सिटी प्रेस और लन्दन में आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस द्वारा प्रकाशित; पृष्ठ संख्या—961 ।

———

यह एक बड़ी अड़चन है कि प्रस्तुत समीक्षक ने इस माला की अन्य पुस्तकें नहीं देखी हैं । फिर भी यह पुस्तक अपनी योजना और विषय की दृष्टि से सराहनीय है । ये भूमिका में इस प्रकार बताये गये हैं :

"इसका उद्देश्य सामान्य पाठक को भारत और पाकिस्तान में आज तक चली आती हुई बौद्धिक और आध्यात्मिक परम्पराओं से परिचित कराना है । इसलिये प्राचीनकाल के धार्मिक और दार्शनिक विकासों की ओर ज्यादा ध्यान दिया गया है । ये सब भी भारतीय-उत्तराधिकार के अंग हैं और उन्नीसवीं और बीसवीं सदी में उनको पुनर्जीवित करने की खास कोशिशें की गई थीं । दूसरी ओर राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक विचारधाराओं की ओर भी ध्यान दिया गया है, जिनका जिक्र प्राचीन भारतीय दर्शन पर ही विशेष ध्यान देने वाले ग्रंथों में अक्सर नहीं किया जाता ।"

compiled and created by Bhartesh Mishra

प्रस्तुत ग्रंथ का विषय-विस्तार अध्यायों के नामों से स्पष्ट हो जाता है। उनमें से खास-खास को ही लिया जाये, तो उनमें ब्राह्मण (वैदिक) धर्म, जैनमत, बौद्धमत, (थेरीवाद, महायान और वज्रयान को शामिल करके), हिन्दू धर्म (जिसे चतुराई के साथ धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के चतुर्वर्ग में बांटा गया है) इस्लाम, सिख धर्म, और भारत और पाकिस्तान के आधुनिक आन्दोलन की चर्चा की गई है। इनमें से आखीर वाले विषय के अंतर्गत पिछले अध्यायों की अपेक्षा सामाजिक धारणाओं और संघर्षों की चर्चा खास तौर पर की गई है। किसी भी विचारक या नेता को छोड़ा नहीं गया। आनन्द रंग पिल्लै से शुरू करके राममोहन राय, देवेन्द्र नाथ टैगोर, दयानन्द सरस्वती, रामकृष्ण और विवेकानन्द, दादाभाई नौरोजी, 'सरैंडर-नौट' (एस० एन०) बनर्जी, राणाडे, गोखले, बंकिमचन्द्र चटर्जी, तिलक, अरविन्दघोष और मुसलमानों में सैयद अहमद खां, इकबाल मुहम्मद अली को लिया गया है। आखीर में टैगोर, गांधी, जिन्ना, लियाकत अली खां, सावरकर, सुभाषचन्द्र बोस, नेहरू, मानवेन्द्रनाथ राय और विनोबा भावे आते हैं। लेखक विचाराधाराओं के क्रमशः विकास का जिस ढंग से निरूपण करते हैं, उससे ध्यान से पढ़ने वाले पाठक के निकट नामों की इस लंबी सूची की विचित्रता और उनका क्रम स्पष्ट हो जाता है।

मूल रचनाओं के जो उद्धरण अनुवाद या मूल रूप में दिये गये हैं, वे सम्बन्धित विचारधारा विशेष का सम्यक् प्रतिनिधित्व नहीं कर पाते, जैसे कुएं वाले आदमी का जो रूपक समरादित्य कथा से पृष्ठ 56–58 दिया गया है, वह केवल जैन धर्म से ही सम्बन्धित नहीं कहा जा सकता ये उद्धरण वैसे भी अपर्याप्त हैं। महायान बौद्ध धर्म और उसकी शाखाओं निरूपण छोटे-छोटे बीस उद्धरणों से कैसे हो सकता है? मेरा विचार कि इस पुस्तक का महत्व सुन्दर भूमिका और विचारधाराओं के संक्षि वर्णन के कारण है, उद्धरणों के कारण नहीं। ये उद्धरण न तो महत्वपू ही हैं और न प्रतिनिध्यात्मक। कभी-कभी तो वे पाठकों को उबा देते हैं। विशेषज्ञ के लिये तो वे बिल्कुल अपर्याप्त हैं।

ग्रंथ का विषयनिष्ठ दृष्टिकोण सराहनीय है। पर भारतीय संस्कृ की समन्वय-भावना का, जो प्रत्यक्ष विभिन्नता के बावजूद युगों-युगों त सभी विचारधाराओं को एक सूत्र में पिरोये रही है, विश्लेषण क की कोई चेष्टा नहीं की गई है। यह अभाव खास तौर प खटकता है।

सब मिलकर अपनी व्यापकता के लिये, विचारधाराओं के विश्लेष के लिये और मूल के उद्धरणों के लिये पुस्तक सर्वथा अद्वितीय है।

—ए० घो

(अनु० रा०

compiled and created by Bhartesh Mishra

लेखकादि-परिचय

नोरा रिचर्डस — लेखिका, रंगमंच और देहात की भक्त हैं, आजकल एकान्त में पंजाब की कांगड़ा पहाड़ी स्थित अन्द्रेत्ता में अपनी जमींदारी में रहती हैं।

हर्बर्ट मार्शल — लंदन की रौयल अकेडेमी आफ ड्रामेटिक आर्ट में रंगमंच-निर्माण और अभिनय कला के मुख्य प्राध्यापक रह चुके हैं। इंगलैंड के प्रसिद्ध नेशनल थ्येटर 'दि ओल्ड बिक' के निदेशक रहे। यूनिटी थ्येटर के संस्थापकों में से एक हैं। लंदन नैबरहुड थ्येटर की भी नींव डाली। भारत में रंगमंच आन्दोलन का अध्ययन और उसमें काम किया है।

सुरेश अवस्थी — एम० ए०, पी० एच० डी०, आकाशवाणी से लगभग दस साल तक सम्बद्ध रहे। हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं में नाट्य समीक्षा लिखते हैं। आजकल शिक्षा मंत्रालय में सम्पादक (हिंदी) हैं।

जेम्स लेबर — सी० बी० ई०, विक्टोरिया और अलबर्ट म्यूजियम, लंदन में नक्काशी, चित्र-सज्जा, डिजाइन और चित्रकला विभाग में कई सालों तक 'कीपर' रहे। ह्विसलर की जीवनी आदि कई ग्रंथों के लेखक हैं।

लक्ष्मीनारायण गर्ग — हाथरस से निकलने वाले सुप्रसिद्ध हिंदी मासिक 'संगीत' के संपादक।

मारी सीटन — ब्रिटिश फिल्म इंस्टीट्यूट के फिल्म आलोचन विभाग की सदस्या हैं। सारगेई आईजनस्टीन की लेखिका, फिल्म आलोचन को लोकप्रिय बनाने के लिये पूरे भारत का पर्यटन कर चुकी हैं।

विश्वनाथ दत्त — एम० ए०, एम० लिट० (केन्ताब), केम्ब्रिज के डा० परसीवल स्पीअर के अधीन ऐतिहासिक अनुसंधान और डा० एच० बटरफील्ड के अधीन कूटनैतिक इतिहास का अध्ययन किया है। आजकल वैज्ञानिक अनुसंधान और सांस्कृतिक मंत्रालय के गजेटियर यूनिट में एक संकलयिता हैं।

महेन्द्र चतुर्वेदी — एम० ए०, आजकल हिन्दी विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में प्राध्यापक

कांताप्रसाद सिंहल — एम० ए०, आकाशवाणी के समाचार विभाग (हिन्दी) में उप-सम्पादक।

ए० घोष — एम० ए०, आनरेरी एफ० एस० ए०, भारतीय पुरातत्व विभाग के महानिदेशक।

मुरियल वासी — एम० ए० (आक्सफोर्ड), सम्पादक, कल्चरल फोरम और उपशिक्षा सलाहकार, सांस्कृतिक छात्रवृत्ति और प्रकाशन डिवीजन, वैज्ञानिक अनुसंधान और सांस्कृतिक कार्य मंत्रालय।

इन्दुजा अवस्थी — एम० ए० (संस्कृत, हिन्दी) आजकल मिरांडा हाउस, दिल्ली में हिंदी प्राध्यापिका।

विजयेन्द्र स्नातक — एम० ए०, पी० एच० डी०, दिल्ली विश्वविद्यालय में हिन्दी विभाग में 'रीडर', अनेक ग्रन्थों के लेखक।

राजेन्द्र द्विवेदी — एम० ए० (संस्कृत, अंग्रेजी), शास्त्री, साहित्यरत्न। आजकल वैज्ञानिक अनुसंधान और सांस्कृतिक कार्य मंत्रालय में सह-सम्पादक (हिन्दी) और सम्पादक 'संस्कृति।

compiled and created by Bhartesh Mishra

हमारे अन्य प्रकाशन

संस्कृति क्या है : एक संगोष्ठी

'संस्कृति' की परिभाषा के बारे में चार विचारपूर्ण दृष्टिकोण ।

मूल्य पच्चीस नये पैसे

आज की कहानी : एक संगोष्ठी

अमेरिका, आस्ट्रेलिया, फ्रांस, ब्रिटेन और भारत के कहानी साहित्य और हिन्दी कहानी पर परिचयात्मक लेख ।

मूल्य पच्चीस नये पैसे

compiled and created by Bhartesh Mishra

सम्पादकीय मण्डल

मा० सं० थेकर — श्री बनारसीदास चतुर्वेदी
श्रीमती मुरियल वासी — डा० नगेन्द्र

राजेन्द्र द्विवेदी (सचिव)

प्रबन्धक, भारत सरकार मुद्रणालय, फरीदाबाद द्वारा भारत में मुद्रित, 1960

compiled and created by Bhartesh Mishra